अच्छी कहानियाँ

अच्छी कहानियां

सम्पादक

सन्तराम वत्स्य

रामप्रसाद एण्ड संस : आगरा

मूल्य 0.86 नए पैसे

चरित्र ही बल है

कौशल-राज के यहाँ एक ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मण बड़ा विद्वान, वेदों का ज्ञाता, सुन्दर और चरित्रवान था। उसकी विद्वत्ता और धर्म-परायणता से मुग्ध होकर राजा ने उसे गुरु धारण कर लिया। राजा उसके लिए इतनी श्रद्धा और भक्ति रखता था कि वह ब्राह्मण अपने मन में बड़ी लज्जा अनुभव करता था। वह सोचता था कि वह, चाहे कितना ही ज्ञानी, कितना ही विद्वान और कितना ही चरित्रवान क्यों नहीं है, इतनी श्रद्धा और भक्ति पाने योग्य फिर भी नहीं है। वह अन्य साधारण लोगों के ऐसा ही एक भोगी गृहस्थी है।

एक दिन उसने सोचा, "राजा मुझ से जो इतनी श्रद्धा-भक्ति रखता है, उसकी परीक्षा करनी चाहिए। क्या वह मेरे ज्ञानी होने के कारण मेरी इतनी प्रतिष्ठा करता है या चरित्र-वान होने के कारण, या फिर मेरे वंश, जाति के कारण?" यह संकल्प करके उसने एक दिन धनपाल की सोने की एक मुहर उठा ली। धनपाल देखता रहा, परन्तु उसने राजगुरु से कुछ न कहा। दूसरे दिन ब्राह्मण ने उसकी दो स्वर्ण-मुद्राएँ उठा लीं। धनपाल ने उस दिन भी कुछ न कहा। तीसरे दिन ब्राह्मण एक मुट्ठी भर स्वर्ण-मुद्रा लेकर चल दिया। उस दिन धनपाल ने राजगुरु को पकड़ लिया।

धनपाल ने राजा से शिकायत की। राजा ने विश्वास न किया। परन्तु राजगुरु ने स्वयं ही जब अपना अपराध मान लिया तो राजा चकित रह गया।

राजा ने कहा, "हे ब्राह्मण, आपने यह काम क्यों किया ? मैं आपका दासानुदास बनकर आपकी सेवा करता हूँ । कितना

ही धन मैंने आपकी भेंट किया । आपने न लिया । परन्तु इन सामान्य कुछेक मुद्राओं को क्यों उठाया ? आप दिनदहाड़े पकड़े गये हैं । आपको दण्ड भुगतना होगा । यद्यपि आपको दण्ड देते हुए मेरी छाती फटी जाती है, परन्तु क्या करूँ राजधर्म का निभाना मेरा परम कर्तव्य है ।"

ब्राह्मण बोला, "महाराज ! आपका कहना सच है । मुझ से जाने यह कुकर्म कैसे हो गया ? आप मुझे दण्ड दीजिए । खुशी से भुगतूँगा ।"

ब्राह्मण की बात सुनकर राजा हैरान रह गया । वह कहने लगा—"मेरी तो समझ में नहीं आता कि आप से

यह काम कैसे हो सकता है? इस भेद को आप ही बता सकते हैं।"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"तो सुनिए महाराज! मैंने केवल परीक्षा ही के लिए यह काम किया है। मैं देखना चाहता था कि आप मेरी इतनी भक्ति किस लिए करते हैं? अब मैंने देख लिया है कि केवल सच्चरित्रता के लिए ही इतने दिन मेरी प्रतिष्ठा होती रही है। जब चरित्र चला जाता है तो मनुष्य को वेदों का ज्ञान, ऊँची कुल-जाति या गंभीर विद्वत्ता आदि कोई भी प्रतिष्ठा के आसन पर नहीं बिठा सकते। चरित्र ही मनुष्य में सबसे बड़ा बल है। परन्तु राज-महल में रह कर चरित्र के बल की रक्षा करना कठिन है। इसलिए मैं आज ही जेतवन में बुद्ध की शरण ग्रहण कर के एक रमता संन्यासी बन जाऊँगा।"

ब्राह्मण की स्त्री-पुत्र और राजा आदि सब ने उसे संसार त्यागने के संकल्प से हटाने का भरसक प्रयत्न किया। परन्तु ब्राह्मण ने एक न सुनी और जेतवन के विहार की ओर चल दिया।

त्रिशूल

कौशाम्बी नामक एक बड़ा शहर है। उसमें धनदत्त नामक एक बड़ा सेठ रहता है। उसके पास व्यापार के लिए पांच सौ बैलगाड़ियां हैं, जिन्हें ढोने के लिए १५०० बैलों की जोड़ी हैं। सभी बैल इतने सुन्दर हैं कि एक को देखें तो दूसरे को भूल जायँ। जितने सुन्दर उतने ही वे मजबूत तथा हृष्ट-पुष्ट हैं। इन पन्द्रहसों में भी त्रिशूल नामक बैल तो अपना सानी नहीं रखता। मोर के अंडे की तरह श्वेत तथा सुन्दर, बल में हाथी के समान मजबूत, और स्वरूप में मानो संगमरमर के पत्थर में खुदा हुआ महादेव का नंदी ही न हो।

धनदत्त ने भी त्रिशूल को पालने-पोसने में कसर नहीं रखी। अपने ही हाथों से पानी पिलाकर और अपने ही हाथों से खाना खिलाकर उसको बड़ा किया। उसके सींगों पर सोने का गहना (सींगों को पहनाया हुआ) है तो गले में चाँदी के घुंघरू। शरीर पर जरीभरत वाले कपड़े की झूल लटकती है। अपने कमाऊ बेटे की तरह वह उससे प्रेम करता है।

उस समय यह नियम था कि सार्थवाह बरसात की ऋतु में घर रहते थे तथा सर्दी और गरमी की ऋतु में प्रवास करते थे। बरसात के पहले बादल जब आकाश में मंडराते थे। धनदत्त सेठ प्रवास का काम पूरा कर ही रहा था कि एक राजा ने पाँच सौ गाड़ी अनाज मांगा। बदले में मुँह मांगे दाम।

एक तो मुंह मांगे दाम और फिर लेने वाला राजा। ऐसे ग्राहक को इंकार भी कैसे किया जा सकता है। जेठ का महीना

था, आसमान आग उगल रहा था। धनदत्त ने तो पाँच सौ गाडियाँ भरीं और प्रवास शुरू हुआ। मंजिल तय करते-करते

वह आगे बढ़ा। बीच में वेगवती नामक नदी आई। उस असह्य गर्मी के दिनों में पानी कम था पर नदी में रेत खूब थी। धनदत्त की गाड़ियाँ इस रेत में फँस गईं। चार-चार जोड़ी बैल जोतने पर भी गाड़ियाँ टस से मस न हुईं।

धनदत्त सेठ का मुँह उतर गया। अब इन बैलगाड़ियों को कौन बाहर निकालेगा? इतने में अपने प्यारे त्रिशूल की याद आई। गाड़ीवान भी कहने लगे कि अब तो केवल त्रिशूल ही मदद कर सकता है। त्रिशूल को हाजिर किया गया। किन्तु उसके सानी का दूसरा बैल तो चाहिए न। बाकी तो सभी बैलों ने खाकर बिगाड़ ही किया था। बात भी सच थी। त्रिशूल के बराबर दूसरा बैल जोड़ी के लिये कहाँ से लाया जाय? आखिर में यह तय हुआ कि आगे किसी दूसरे बैल को रखा जाय और पास में त्रिशूल को मदद में जोता जाय। वाह रे त्रिशूल वाह! एक ही झटके में गाड़ी बाहर। फिर तो उस अकेले बैल ने पाँच सौ गाड़ियाँ रेत से बाहर निकाल दीं। सार्थवाह का मुरझाया हुआ चेहरा वसन्त के फूल की तरह खिल उठा।

सभी ने अपनी गाड़ियाँ आगे हाँक दीं। लेकिन त्रिशूल अब नहीं चल सकता था। जेठ मास की गर्मी के कारण वह अब पूरा थक चुका था। जरा जोर लगाकर चलने लगा तो उसके पैर मुड़ गये और वह चक्कर खाकर जमीन पर गिर पड़ा। पाँच सौ बैलगाड़ियों को नदी से पार करने में उसका अङ्ग-अङ्ग टूट गया था। गाड़ीवानों ने कहा कि अब वह नहीं उठ सकता। वर्षा ऋतु नजदीक है, हमें प्रवास पूरा करना है तथा लौट जाना भी है। अतः देर करने से काम नहीं चलेगा। गाड़ियाँ जल्दी ही आगे रवाना कर देनी चाहिए।

धनदत्त फिर चिन्ता में पड़ गया। अपने इस प्यारे बैल को किसके सहारे पर छोड़ दिया जाय? दूसरी तरफ गये बिना

छुटकारा भी न था। उसने पास के गाँव के लोगों को बुलाया और कहा :

"भाइयो ! मैं कौशाम्बी का धनदत्त नामक व्यापारी हूँ। अभी मैं प्रवास पर जा रहा हूँ। यहाँ मेरा प्यारा बैल टूट चुका है। वर्षा ऋतु बहुत निकट है। प्रवास भी लम्बा है। अतः हमें जल्दी जाना है। जितना चाहिए उतना धन मुझ से ले लो। मैं जब तक न लौटूं तब तक इसकी देखभाल करना और इसे रोज चारा-पानी देना और धूप से बचाने के लिए इस पर छाया करना।"

धनदत्त अपने प्यारे बैल को ग्रामजनों को सौंप कर तथा मुंह मांगे पैसे देकर आगे बढ़ा।

संसार में पैसे के आगे कोई रिश्तेदारी नहीं रहती। पैसे के लिए लड़का बाप से और भाई भाई से लड़ता है। जब मनुष्य मनुष्य के आपसी सम्बन्ध इस तरह हो जाते हैं तो यह तो मनुष्य और पशु का सम्बन्ध ठहरा। सभी ने धनदत्त से तो हाँ-हाँ करके पैसे ले लिये लेकिन आँखें हुई ओट और दिल में आयी चोट ! बेचारे बैल की एक दो दिन देखभाल की, उसे थोड़ा बहुत घास-चारा दिया, एकाध बार पानी पिलाया और थोड़ी बहुत छाया भी की। बस फिर सब पैसे खाकर चुप बैठ गये।

वह गूँगा प्राणी किस से शिकायत करे ? पैरों के जोड़ टूट जाने से उससे हिला-डुला भी नहीं जाता था, तो चलने की क्या कहे। भूखा और प्यासा, जेठ की गर्मी में वह बुरी मौत मरा। गीध और बाज ने उसके शरीर को नोच खाया। उसकी देह की अन्तिम क्रिया करने की किसे फुरसत थी।

उसके सड़े हुए शरीर से भारी गंध छूटने लगी। लोग जब वहाँ से निकलते तो नाक कपड़े से दबा देते। पर किसी को वह दुर्गन्ध दूर करने की न सूझी। गीध और गिधड़ उसके

शरीर से मांस नोच-नोच कर ले जाते, गाँव पर चक्कर काटते तथा जहाँ-तहाँ मांस के टुकड़े डालते।

स्वार्थी लोगों का गाँव भी कैसा होगा ? सभी अपना-अपना घर स्वच्छ करके पड़ौसी के घर की तरफ गंदगी डाल देते हैं। गाँव में यकायक महामारी फैली और लोग मक्खी की तरह मरने लगे। आज सुबह जो आदमी ठीक तन्दुरुस्त हालत में चलता फिरता नजर आता, वही व्यक्ति शाम को मरा हुआ नजर आता है। ऐसे स्वार्थी गाँव में पराये मुर्दे को जलाये भी कौन ? अतः बिना जलाये मुर्दे के शरीर से गंदगी अधिक फैलती है तथा रोग और भी भड़कता है। बेहिसाब लोग मरने लगे। सभी जगह हाहाकार मच गया।

आखिर ग्रामजन विचार करने के लिए एकत्र हुए। उस समय किसी बुद्धिमान ने कहा : भाइयो ! मुझे लगता है कि हमने उस देव समान सुन्दर बैल को सड़ा-सड़ा कर मारा है और मरने दिया है, उसका पाप फूट निकला है। स्वार्थ जैसा कोई बड़ा पाप नहीं है। अतः अब हम नदी-तट को साफ करें, गाँव साफ करें, घरों को स्वच्छ करें तथा दिल में दया को धारण करें। और हमारी यह गलती हमें और हमारी प्रजा को हमेशा ख्याल में रहे, इसलिए उस देव समान बैल का 'देवल' (मन्दिर) बनावें। वहाँ धूपदीप से उसकी पूजा करें और उसे नैवेद्य भेंट चढ़ाएँ। स्वच्छ होकर हमेशा उसके दर्शनार्थ जाएँ।

उस बुद्धिमान ग्रामजन की बात सभी के गले उतर गयी। गाँव साफ हो गया। देखते-देखते महामारी शान्त हो गयी। ग्रामजनों ने नदी-तट पर एक मन्दिर बनाया। उस मन्दिर में भैरव की मूर्ति स्थापित की। त्रिशूल को शूलपाणि यक्ष के रूप में पूजने लगे। जिसे जीवित अवस्था में नहीं सम्हाला, उसकी मरने के बाद ये स्वार्थीजन पूजा-प्रार्थना करने लगे।

स्वार्थी हमेशा डरपोक होते हैं। अब सभी उस मन्दिर के यक्ष से डरने लगे। रात को वहाँ से निकलने में भी डरने लगे। वहाँ कोई भूला-भटका प्रवासी रात भर रह जाता तो डर से ही मर जाता।

एक दिन चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर विहार करते-करते वहाँ आए। रात को उसी मन्दिर में रहे। ग्राम-जनों ने सोचा कि मृत्यु उस व्यक्ति को वहाँ खींच लाई है। वह भय भैरव उसे जरूर मार देगा।

पर जब सुबह हुई और लोगों ने देखा तो प्रभु वहाँ शांति से बिराजे हुए थे। सभी लोग झुंड के झुंड वहाँ एकत्र हो गये और प्रभु के पाँव पड़ने लगे।

भगवान महावीर ने उन्हें समझाया कि इस संसार में स्वार्थ तथा अज्ञान के सिवाय कोई भी बड़ा भय भैरव नहीं है। उससे डरना सीखो तो ऐसे भैरव से डरने की आवश्यकता ही न रहेगी।

लोग समझ गये और सुखी हुए।

अभिमन्यु की वीरता

भारतवर्ष में इतिहास के दो बड़े-बड़े पुराने ग्रन्थ हैं—रामायण और महाभारत। दोनों में वीर बालकों की बहादुरी का बखान मिलता है। रामायण में कुश और लव की वीरता प्रसिद्ध है। उन दोनों वीर बालकों ने भरत-लक्ष्मण जैसे अगड़-धत्त वीरों के छक्के छुड़ा दिये थे—सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान् आदि बाँके-लड़ाकों की पूँछ पकड़कर घसीट

मारा था। उन्हीं के समान एक दूसरे बालक की वीरता सुनाता हूँ।

उसकी कथा महाभारत में लिखी है। उसका नाम 'अभिमन्यु' था—अर्जुन का बेटा, भीम का भतीजा, श्रीकृष्ण का भांजा, सुभद्रा का लाड़ला ! भला ऐसे बहादुर के बल और तेज का क्या ठिकाना ! बाण चलाने में बाप के समान, रूप की सुघराई में मामा के समान ! एक ओर देखता है बाप के हाथ में प्रचंड गांडीव, दूसरी ओर बड़े ताऊ के हाथ में खोपड़ी चूरने वाली गदा, और सामने की ओर मामा के हाथ में संसार-भर की शक्ति की बागडोर ! फिर क्यों न उसका नया खून लड़ाई के जोश से खौलता रहे ? क्यों न बल की उमंग से उसकी बोटी-बोटी फड़कती रहे ? क्यों न उसके रोम-रोम से शक्ति की बिजली निकलती रहे ? क्यों न वह अपने आगे भीष्म और द्रोण को तुच्छ समझे ? क्यों न वह कर्ण और कृपाचार्य-जैसे महारथियों के दांत खट्टे करने में समर्थ हो ?

याद करो महाभारत का वह दिन ! लड़ाई के नगाड़े आकाश-पाताल हिला रहे हैं—एक सोलह बरस का सुन्दर-सजीला नौजवान छोकरा कवच-कुंडल पहनकर, तीर-तरकस-कमान से लैस होकर, पीले घोड़ों के रथ पर खड़ा मुस्करा रहा है—माता आरती उतारती है, बूढ़िया दादी असीसती है, बड़े ताऊ पीठ ठोक कर शाबाशी देते हैं, बाप छाती से लगाकर माथा सूँघता है, मामा हँस-हँसकर मुँह चूमता है—वह फूला अंग नहीं समाता, कवच की कड़ियाँ कड़कड़ा रही हैं, भुजाएँ फड़क रही हैं, उंगलियाँ फड़फड़ा रही हैं, चेहरे पर प्रसन्नता की झलक है, दिल में लड़ाई की ललक है ! बस शंख बजने की देर है, फिर तो छोकरा शत्रुओं को छठी का दूध याद करा देगा !

वह देखो—युद्ध ठन गया है, कोसों का लम्बा-चौड़ा कुरुक्षेत्र वीरों की डरावनी ललकार से भर गया है, खून के फव्वारे छूट रहे हैं, रक्त के पनाले बह रहे हैं। हथियारों की झनकार से दसों दिशाएँ गूँज रही हैं, घोड़ों की हिनहिनाहट और हाथियों की चिघाड़ से आकाश फटा जा रहा है—चारों ओर घनघोर घमासान मचा हुआ है पर वह बीच में बड़े जोर का हाहाकार क्या हो रहा है ? अच्छा ! अभिमन्यु वहाँ गजब ढा रहा है, मानो हाथियों के झुण्ड में शेर दहाड़ रहा है। मालूम होता है, लहराते हुए समुद्र की छाती चीर कर बड़ा भारी जहाज आगे बढ़ता जा रहा है।

पर अब कैसे आगे बढ़ेगा ? वह देखो, महाराज बृहद्बल आकर भिड़ गए—रोक दिया रास्ता, छिड़ गई लड़ाई, छिप गया अभिमन्यु उनके बाणों से ! पर यह क्या ? बाणों की घटा को तितर-बितर कर तेजस्वी सूर्य की तरह अभिमन्यु निकल आया ! मारा कसकर बाण—बृहद्बल की ध्वजा कट कर उड़ गई आकाश में ! और उनकी चलाई हुई गदा बीच ही में कट कर खण्ड-खण्ड हो गई। यह लो, अभिमन्यु ने उनके घोड़े भी मार डाले। बेचारे को बिना रथ का कर छोड़ा। अब भला वे पैदल क्या लड़ेंगे ? ऐसे-वैसे वीर का सामना थोड़े ही है ? लोहे का चना है—बज्र का टुकड़ा है। ठट्ठा नहीं !

अरे वह देखो, बूढ़े दादा भीष्म भी अपने लिलार का पसीना नहीं पोंछ पाते। क्या करें, परपोता दम नहीं लेने देता ! जोर बहुत लगाते हैं, बूँदियों की तरह तीर बरसा रहे हैं, उनके साथ-साथ कृतवर्मा आदि वीर भी एड़ी-चोटी का पसीना एक किये हुए हैं; मगर अभिमन्यु तनिक टस-से-मस नहीं होता—शरीर लहूलुहान हो गया है, बड़े-बड़े धुरन्धर वीर घेरे हुए हैं, फिर भी पट्ठे का तेज तनिक कम नहीं

होता । देखते-देखते दादा की ऊँची ध्वजा काट ही डाली, और चाचा भीम दूर ही से गरज कर बोल उठे—"शाबाश बेटा !"

वाह ! यह गजब हुआ ! इसी बीच अभिमन्यु के प्यारे साले उत्तरकुमार को शल्य ने मार डाला ! भला अब कुशल कहाँ ? उत्तर के भाई श्वेत और अभिमन्यु ने घटाटोप युद्ध ठान दिया । कौरवों की सेना में त्राहि-त्राहि मच गई । देखो, वह दूर ही से दुर्योधन अपनी भागती हुई सेना को रोकता और अपने महारथियों को ललकारता आ रहा है ।

वाह ! अब तो फिर जमकर लड़ाई ठन गई । द्रोण, अश्वत्थामा आदि भीष्म की सहायता के लिए आ पहुँचे । पर धन्य अभिमन्यु ! सब की इच्छा पूरी कर दी ! लड़ते-लड़ते शाम हो गई, मगर फैसला न होने दिया । सब पर बहादुरी की धाक जमा दी । साथ ही कौरवों की आँखों का काँटा भी बन गया । उन लोगों ने उसी समय निश्चय किया कि किसी तरह इस छोकरे का काम तमाम करना चाहिए । पहले एक ही अर्जुन का भय था और अब यह दूसरा अर्जुन हुआ चाहता है ।

बस, दूसरे ही क्षण दुर्योधन के पुत्र राजकुमार लक्ष्मण बड़े तपाक से अभिमन्यु से जा भिड़े । दोनों जवान जी भर लड़े पर अभिमन्यु ने लक्ष्मण के रथ और हथियारों का सफाया कर दिया—सारी हेकड़ी हवा हो गई, बेचारा अपने पिता के रथ पर जा छिपा और अभिमन्यु उसका पीछा छोड़ महाबली अम्बष्ठ के पीछे पड़ गया । फिर उसको भी पानी-पानी कर छोड़ा । बेचारा बिना रथ और हथियार का हो सिर पर पाँव रखकर भागा ।

किन्तु दुर्योधन अपने वीर पुत्र की यह करारी हार भला कब सह सकता था ? उसने अपने बलवान मित्र अलम्बुष

राक्षस को बढ़ावा दिया। वह एकाएक अभिमन्यु पर टूट पड़ा। बड़ा ही घनघोर माया-युद्ध ठाना, पर अभिमन्यु ने बड़ी मुस्तैदी से उसके हौसले पस्त कर दिये। वह भी रथ को छोड़ अपनी जान लेकर पैदल ही भाग खड़ा हुआ।

पांडवों की यह जीत दुर्योधन से कैसे देखी जाए? वह युधिष्ठिर को पकड़ने की बन्दिशें बांधने लगा।

युधिष्ठिर को बीहड़ घेरे में डालकर पकड़ने के लिए चक्र-व्यूह की लड़ाई ठानने का बन्दोबस्त किया। अर्जुन को कुरु-क्षेत्र से अलग दूर हटा ले जाने का बीड़ा उसके मित्र और त्रिगर्त्त देश के राजा सुशर्मा ने उठाया; क्योंकि उसके रहते युधिष्ठिर का बालबांका होना टेढ़ी खीर थी।

सुशर्मा के झमेले में श्रीकृष्ण सहित अर्जुन के फँस जाने से युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हो गये। माथा ठोंककर कहने लगे—"अब चक्रव्यूह की भूलभुलैया में पैठकर उसके एक नहीं सात-सात पेचीले दरवाजों को कौन भेदेगा?"

बड़े ताऊ को बड़ी उदासी के साथ ऐसा कहते सुनकर अभिमन्यु बड़े उत्साह से बोला—"आप इतना उदास क्यों हो रहे हैं? पिताजी नहीं हैं तो क्या हुआ, मैं तो हूँ! मेरे रहते क्या उनके नाम पर धब्बा लग सकता है? जान लड़ा कर उनके मुँह की लाली रक्खूँगा। छः दरवाजों पर अगर इन्द्र और यमराज भी तैनात होंगे, तो मैं उन्हें बेधड़क तोड़ डालूँगा—केवल सातवें के भेदने का उपाय कीजिये।"

यह सुनकर भीम मारे खुशी के उछल पड़े और अभिमन्यु को अंकवार में भरकर उठाते हुए बोले—"वाह बेटा! जब छः दरवाजे तू तोड़ ही देगा, तब सातवें में क्या रक्खा है? उस एक को तो मैं गदा की चोट से चूर कर दूँगा।"

फिर क्या, अभिमन्यु सज-धजकर चक्रव्यूह में पैठ गया और कौरवों की सेना को बुरी तरह से मथने लगा।

किन्तु उसकी मदद के लिये और दूसरा कोई अन्दर नहीं घुस पाया, फिर भी उसे तनिक चिन्ता न थी।

अकेले ही अभिमन्यु, द्रोण, कर्ण आदि महारथियों को मुंहतोड़ जवाब देता हुआ आगे बढ़ता चला गया। जैसे मतवाला हाथी किसी तालाब में पैठकर कमलों को रौंद डालता है, वैसे ही उसने शत्रु की सजाई हुई सेना की कतारों को तितर-बितर कर डाला। किसी एक वीर से न बन पड़ा कि उसकी आँच सह सके।

अन्त में बहुत-से वीर झट जत्था बाँधकर उसके सामने आ डटे, जिनमें एक लक्ष्मण-कुंवर भी थे, जो हजरत एक बार उसको पीठ दिखा चुके थे। पर इस बार तो अभिमन्यु ने देखते ही देखते उनको तलवार के घाट उतार दिया। मचा हाहाकार! जुट पड़े सब-के-सब अभिमन्यु पर। लेकिन इतने पर भी उस वीर बालक के सधे हुए हाथ की सफाई देखकर सब के लिलार में सिकुड़न पड़ गयी। द्रोण और कर्ण-सरीखे महारथी भी दाँतों तले उंगली दबाकर रह गए। जब अभिमन्यु ने सब को नाकों दम कर दिया, तब दुर्योधन की सलाह से कर्ण ने उसके धनुष की डोरी काट डाली, और उसी समय अश्वत्थामा ने उसका कवच छेद डाला और लगे हाथों दुःशासन ने भी उसके सारथी और घोड़ों को मारकर लक्ष्मण-कुंवर की आग बुझा ली।

किन्तु इतना सब होने पर भी अभिमन्यु के चेहरे पर तनिक सिकुड़न न आई। टूटे रथ का चक्का लेकर सब की खबर लेने लगा। उस समय वह अपने मामा श्रीकृष्ण की तरह सुदर्शन चक्र से प्रलय मचाता हुआ-सा दीख पड़ा। जब द्रोण ने उस पहिये को भी काट डाला, तब उसने गदा उठाई और अपने बड़े ताऊ भीम की तरह गदायुद्ध में शोभायमान होकर शत्रु की सेना में हैजा फैला दिया! तब तक उधर से

दु:शासन का बेटा, जो गदा-युद्ध में बड़ा शोख था, अखाड़े में उतर आया। दोनों नौजवान छोकरे दिल खोलकर लड़े और लड़ते-लड़ते एक दूसरे की गदा से घायल होकर बेहोश हो गए।

चूंकि अभिमन्यु कई महारथियों को खेल खिलाते-खिलाते थक गया था, इसलिए उसकी बेहोशी दूर होने से पहले ही दु:शासन का लड़का सचेत हो उठा और धर्म-अधर्म का विचार छोड़कर उसने अचेत पड़े हुए अभिमन्यु के सिर को अपनी गदा की गहरी चोट से चकनाचूर कर दिया। कुरुक्षेत्र की धरती पर खूनी अक्षरों में अपनी बहादुरी की अमिट छाप छोड़कर वह वीर बालक सदा के लिये वहीं सो गया।

गढ़ आया पर सिंह गया

सोमवार का प्रभात-काल था। शिवाजी का डेरा रायगढ़ में था और माता जीजाबाई प्रतापगढ़ में थीं। माता प्रभात-काल में हाथी-दाँत के कंघे से बाल संवार रही थीं कि खिड़की में से पहाड़ की चोटी पर चमकता हुआ सिंहगढ़ का मस्तक दिखाई दिया। मानिनी माता के दिल में एक बर्छी सी चुभ गई। सिंहगढ़ मुगलों के हाथों में! क्या यह एक क्षत्राणी को सह्य हो सकता था? माता ने उसी दम एक दूत को रायगढ़ रवाना किया। रायगढ़ पहुँच कर दूत ने शिवाजी को संदेश दिया कि माता ने आज्ञा दी है कि इसी समय चले आओ। आज्ञापालक पुत्र उस समय भोजन कर रहा था।

माता की आज्ञा सुनकर उसने मस्तक झुकाया। खाना बीच ही में छोड़ दिया, हाथ धोये विना, शस्त्रों से सज कर वह घोड़े पर सवार हो गया और वायुवेग से प्रतापगढ़ के द्वार पर पहुँच गया। जीजाबाई प्रतीक्षा ही कर रही थीं। शिवाजी ने अन्दर घुसकर देखा कि पांसों के खेल का सामान तैयार पड़ा है। आज्ञा हुई कि बाजी लगाओ। विस्मित परन्तु नम्र हृदय से, विना कोई प्रश्न पूछे, शिवाजी पांसे फेंकने लगे। माता ने भवानी का ध्यान करके खेलना आरम्भ किया और शीघ्र ही शिवाजी को परास्त कर दिया। शिवाजी ने माता से कहा कि आप मेरा कोई भी किला मांग सकती हैं। जीजाबाई ने झट उत्तर दिया कि मुझे सिंहगढ़ चाहिए। शिवाजी अब समझे।

सिंहगढ़ को दुश्मन से लेना आसान नहीं था, उसका किलेदार उदयभानु पूरा दैत्य था। एक दिन में दो भेड़ें और २० सेर चावल का खा जाना उसके लिए साधारण बात थी।

उदयभानु के १८ स्त्रियाँ थीं और १२ पुत्र थे, जो पिता से भी अधिक बलवान समझे जाते थे। किले में एक खूनी हाथी था जिसका नाम चंद्रावलि था और एक लड़ाकू था जिसका नाम सीदीहिलाल था। इन दोनों को जीतने वाला वीर मिलना कठिन था। ऐसे रावण द्वारा सुरक्षित किले को लेना लोहे के चने चबाने से भी अधिक था। परन्तु जैसे क्षत्राणी अपने आदेश को वापस नहीं ले सकती, वैसे ही क्षत्रिय भी वचन देकर भूठा नहीं बन सकता। शिवाजी ने सिंहगढ़ का किला जीतकर माता के चरणों में रखने की प्रतिज्ञा की।

प्रतिज्ञा तो कर ली, पर 'म्याऊं' का ठौर कौन पकड़े ? वीर सेनापति द्वारा रक्षित उस किले पर कौन आक्रमण करे ? बहुत विचार के पीछे शिवाजी की उंगली अपने बाल्यसखा तानाजी मालसुरे पर पड़ी। तानाजी मालसुरे शिवाजी की सम्पत्ति और विपत्ति दोनों का साथी था। वह विख्यात पराक्रमी था। शिवाजी ने इस संदेश के साथ शीघ्रगामी दूत भेजा कि तानाजी मालसुरे तीन दिन के अन्दर १२ हजार सिपाहियों के साथ रायगढ़ में पहुँच जाए। जब दूत तानाजी के पास पहुँचा, तब वह अपने पुत्र रायबा के विवाह की तैयारी में लगा हुआ था। प्रभु की आज्ञा पहुँचते ही उत्सव-वाद्य बन्द करा दिया गया और तीन दिन पूरे होने के पूर्व १२ हजार सिपाहियों के साथ तानाजी रायगढ़ के द्वार पर आ पहुँचा।

शिवाजी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। ज्योंही उन्होंने मराठा सेना की ध्वजाएँ देखीं, त्योंही वह बाहर आकर तानाजी से गले लग कर मिले। तानाजी ने शिवाजी को उलाहना दिया कि तुमने मुझे पुत्र के विवाहोत्सव से क्यों बुलाया ? शिवाजी ने उत्तर दिया कि तुम्हें मैंने नहीं, माताजी ने बुलाया है। माता जीजाबाई हाथ में दीपक लिए पहले से तैयार खड़ी थीं। उन्होंने तानाजी के सिर के चारों ओर दीपक की परिक्रमा करायी, माथा चूमा और जयमाल पहनाकर तिलक लगाया। विघ्नों के नाश के लिए जीजाबाई ने हाथ की अंगुलियाँ चटाकर आशीर्वाद दिया।

तानाजी ने आशीर्वाद ग्रहण करते हुए जीजाबाई के सामने झुककर सिंहगढ़ को जीतने की प्रतिज्ञा की। रात का अँधेरा होने के साथ ही मराठा सेनाएँ सिंहगढ़ की तलहटियों में घूमने लगीं। तानाजी ने स्वयं देहाती का वेष धर कर दुर्ग

की परिक्रमा की और जानने योग्य वार्ता का पता लगा लिया। रात के घोर अंधकार में, जबकि सिंहगढ़ के रक्षक गहरी नींद में सो रहे थे, तानाजी चुने हुए सिपाहियों के साथ कल्याण-द्वार के नीचे पहुँच गया। किला एक ऊँची चोटी पर बना हुआ है। ऊपर चढ़ना दुष्कर था।

संदूकची में से शिवाजी के प्रसिद्ध घोरपट 'यशवन्त' को निकालकर तानाजी ने उसके माथे पर चन्दन लगाया, गले में माला पहनाई और कमर में कमन्द बाँधकर उसे ऊपर फेंका। ऊँचाई के अधिक होने से वह स्थान पर न पहुँच सका और वापस आ गया। तब तानाजी ने यह धमकी देते हुए कहा कि यदि इस बार भी यशवन्त लौट आया तो इसे मार कर खा जाऊँगा, फिर उसे पूरे जोर से ऊपर फेंका। अब की बार उसने चोटी पर अपने पंजे गाड़ दिए।

कमन्द के सहारे मराठा सिपाही धड़ाधड़ ऊपर चढ़ने लगे। चढ़ने वालों में सबसे पहला नम्बर तानाजी का था। तलवार को दाँतों में थामकर और जान को हथेली पर लेकर वह वीर दुश्मन के दाँतों तक चढ़ गया। ५० सिपाही चोटी पर पहुँच चुके थे कि कमन्द बीच से टूट गई। ऊपर के सिपाही ऊपर और नीचे के सिपाही नीचे रह गए।

असली नेता वही है, जिसका दिमाग कठिनाई के समय शान्त रहे। तानाजी के एक ओर दुश्मनों से भरा हुआ दुर्ग था, और दूसरी ओर भयानक खाई थी। विचार-शक्ति को कायम रखते हुए मराठा सेनापति ने किले पर धावा करने का ही निश्चय किया। दबे पाँव जाकर उन लोगों ने कल्याण-द्वार पर और अन्य दो द्वारों के बाहर जो सिपाही पहरा दे रहे थे, उन्हें मार गिराया।

उदयभानु उस समय शराब और अफीम के नशे में मस्त

होकर अन्तःपुर में जा रहा था। उसे शत्रु के आने का समाचार मिला, तो उसने पहले चन्द्रावलि हाथी को और फिर सीदीहिलाल को आगे बढ़ने का हुक्म दिया। तानाजी अपने समय का प्रसिद्ध तलवार चलाने वाला था। चन्द्रावलि और सीदीहिलाल के सूँड़ और सिर उसकी तलवार की भेंट हो गए। तब उदयभानु ने अपने १२ लड़कों को मैदान में भेजा। ये भी काम आ गए, तब उसकी नींद टूटी।

अपनी १८ औरतों को अपने हाथ से मारकर हाथ में नंगी तलवार लेकर पठानों की फौज के साथ उदयभानु किले से बाहर निकला और ५० मराठों पर टूट पड़ा। वह आक्रमण बड़ा वेगवान था। दोनों सेनापति आमने-सामने आकर भिड़ गए। उदयभानु की तलवार तानाजी पर और तानाजी की तलवार उदयभानु पर एक ही समय में गिरी। दोनों वीर एक ही समय में धराशायी हो गये। उदयभानु की मृत्यु ने किले वालों का दम तोड़ दिया, परन्तु मराठे हतोत्साह न हुए।

तानाजी के भाई सूर्याजी के सेनापतित्व में मराठा सिपाही 'हरहर महादेव' की ध्वनि से आकाश को गुंजाते हुए किले पर टूट पड़े। द्वार पर कब्जा कर लिया गया और शीघ्र ही सिंहगढ़ की चोटी पर महाराष्ट्र का भगवा झंडा फहराने लगा। सिपाहियों ने किले के बाहर घुड़साल के कुछ छप्परों में आग लगाकर शिवाजी को सिंहगढ़-विजय की सूचना दे दी।

सिंहगढ़-विजय की सूचना पाकर शिवाजी प्रतापगढ़ से तानाजी के स्वागत के लिए खुशी-खुशी चल पड़े। पर जब वहाँ पर पहुँचकर वीर तानाजी की मृत्यु का समाचार सुना तो विह्वल हो उठे। अपने वीर मित्र तथा सेनापति के शव

को छाती से लगा लिया और कहने लगे—"गढ़ आया, पर सिह गया।"

न्याय या दया

भूमध्य-सागर के किनारे, वेनिस नाम के सुन्दर नगर में, एंटोनियो और बेसेनियो नाम के दो मित्र रहते थे। एंटोनियो एक समृद्धशाली व्यापारी था। पूर्व के देशों के साथ, समुद्र-पथ से, उसका व्यापार बहुत चलता था और उसके जहाज बहुत दूर-दूर के देशों को जाते थे।

पोर्शिया नाम की एक धनी कन्या के साथ बेसेनियो का घनिष्ठ प्रेम हो गया था। परन्तु स्वयं निर्धन होने के कारण, उससे मिलने के लिये वह बहुत ही कम जा सकता था। एक बार उसने एंटोनियो से कहा—"भाई, कुछ रुपया दो तो मैं पोर्शिया से मिल आऊँ।" एंटोनियो का कुल रुपया उसके जहाज में था, इस कारण वह, बेसेनियो को, पोर्शिया के यहाँ जाने को, रुपये न दे सकता था। इसलिये उसने शाइलाक नामक एक यहूदी साहूकार से उसे रुपये दिलवा दिए। शाइलाक ने हँसी-हँसी में कहा—"भाई देख, मैं तेरी ओर से रुपये तो अवश्य देता हूँ, पर यदि मेरा रुपया तीन महीने में न चुकाया गया, तो मैं तेरे शरीर का एक सेर मांस काट लूंगा।" शाइलाक कितने बुरे स्वभाव का मनुष्य है, वह बेसेनियो भलीभांति जानता था। इसलिये उसने एंटोनियो को ऐसी प्रतिज्ञा करने से मना किया। परन्तु एंटोनियो को पूरा विश्वास था कि उसका जहाज तीन महीने से पहले ही वापस आ जाएगा। उसे बेसेनियो पर स्नेह भी बहुत था। अतएव उसने प्रसन्नतापूर्वक इस बात को स्वीकार कर लिया।

उसने इस विषय का एक दस्तावेज भी लिखकर शाइलाक को दे दिया।

बेसेनियो वह रुपया लेकर पोर्शिया के पास गया। इसी बीच में पोर्शिया का बाप मर गया था और मरते समय उससे कह गया था कि मैं तुझे सोने, चांदी और सीसे के ये तीन संदूक देता हूँ, उनमें से हर एक के ऊपर एक-एक लेख है और एक के

भीतर तेरा चित्र है। तेरे पास रुपया देखकर बहुत-से लोग तुझसे विवाह करने आएंगे। परन्तु तू उन्हें ये सन्दूक दिखला देना और उसमें से किसी एक को पसन्द करने को कहना। जिसके पसन्द किये हुए सन्दूक में तेरा चित्र मिले, उसी से विवाह करना। सोने के सन्दूक पर यह लिखा था—"बहुतों को पसन्द।" चाँदी के सन्दूक पर लिखा था—"तुमको पसन्द।" सीसे के सन्दूक पर लिखा था—"सब खोकर।"

बेसेनियो के आने से पहले पोर्शिया के पास एक अफ्रीका और दूसरा फ्रांस का राजा आ चुका था। अफ्रीका के राजा ने समझा कि बहुतों को पसन्द और क्या होगा?—पोर्शिया की तस्वीर ही होगी। यह सोचकर उसने सोने का सन्दूक खोला। अन्दर पोर्शिया की तस्वीर के बदले ये शब्द निकले—"चमकने वाली सभी वस्तुएँ सोना नहीं होतीं।" फ्रांस का राजा अभिमानी था। उसने सोचा कि पोर्शिया के सिवा और कौन मेरे योग्य हो सकता है? यह समझकर उसने चाँदी का सन्दूक लिया। लेकिन उसमें पोर्शिया का चित्र न था। इस प्रकार दो आगन्तुकों को निराश होना पड़ा।

अब बेसेनियो की क्या दशा होगी, यह सोचती हुई पोर्शिया बैठी थी कि इतने ही में बेसेनियो आ पहुँचा। पोर्शिया ने पिता की आज्ञा के अनुसार उसे भी तीनों सन्दूकों की कसौटी पर कसा। बेसेनियो के मन में यह था कि सब खोकर, अर्थात् अपना सर्वस्व त्याग कर भी, मुझे पोर्शिया से विवाह करना है। उसे अपने मन का यह भाव सीसे के सन्दूक पर लिखा हुआ दिखलाई पड़ा। इसलिये उसने उसी को पसन्द किया। खोलकर देखा तो भीतर पोर्शिया का चित्र मिला। इससे पोर्शिया और बेसेनियो दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई। विवाह का दिन निश्चित किया गया। इतने में अभाग्यवश वेनिस से एक पत्र आया, जिसमें लिखा था कि एंटोनियो का

जहाज भँवर में पड़ गया है और शाइलाक के रुपये देने का समय निकट आ गया है। यह पढ़ते ही बेसेनियो को बड़ा आश्चर्य हुआ। दुखित होकर उसने निश्चय किया कि यदि शाइलाक मेरे मित्र एंटोनियो को कष्ट पहुँचाएगा, तो मैं प्राण त्याग दूँगा। उसने पोर्शिया से वेनिस जाने की आज्ञा माँगी। पोर्शिया ने कहा—"मुझसे विवाह करके मेरा सब धन ले जाओ और शाइलाक जो माँगे, उसे देकर अपने मित्र को बचाओ।"

बेसेनियो ने पोर्शिया के साथ विवाह किया और शाइलाक को देने के लिये धन लेकर उसने वेनिस के लिये प्रस्थान किया। परन्तु उसके पहुँचने के पहले ही शाइलाक ने एंटोनियो को कारागार में भिजवा दिया था। बेसेनियो के आने के पश्चात् वेनिस के राजा के यहाँ उसका मुकदमा आरम्भ हो गया। एंटोनियो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपना माँस कटाने को तैयार हो गया। राजा को उस पर दया आई और उसने शाइलाक को बहुत कुछ समझाया। परन्तु एंटोनियो, बड़ी उदारता से, निर्धनों को रुपये उधार देता था ; इसलिये शाइलाक उससे बहुत दिनों से द्वेष रखता था। एंटोनियो की उदारता के कारण प्रायः शाइलाक, अपने असामियों से, इच्छानुसार धन वसूल न कर पाता था। उसने राजा की सलाह न मानी। बेसेनियो दूना रुपया देने को तैयार हो गया, तो भी दुरात्मा शाइलाक उसे लेने पर सहमत न हुआ। वह यही हठ करने लगा कि मुझे केवल एंटोनियो का सेर भर माँस काट लेने दो। राजा ने कहा—"अरे भले आदमी, तू दूसरों पर दया नहीं करेगा तो ईश्वर तुझ पर कैसे दया करेगा ?" शाइलाक ने जवाब दिया—"मुझे दया नहीं चाहिए, मुझे तो न्याय चाहिए।" राजा यह उत्तर सुनकर बड़े असमंजस में पड़ गया।

इतने ही में एक वकील कचहरी में आया और यह निश्चय हुआ कि इस विषय पर उससे परामर्श लिया जाए।

उसने दोनों पक्षों का वृत्तान्त सुना और शाइलाक से दया करने की प्रार्थना की।

इधर बेसेनियो ने दस गुने रुपये सामने रख दिये ; परन्तु शाइलाक उसे भी लेने पर सहमत न हुआ। उस विद्वान् वकील ने एंटोनियो से अपनी छाती खोलने को कहा। सुनते ही शाइलाक का तो रोम-रोम आनन्द से पुलकित हो गया। वह बार-बार 'वाह ! वाह ! शाबाश, शाबाश !' कहने लगा। वकील ने शाइलाक से पूछा—"क्या तुम्हारे पास माँस काटने की छुरी और तोलने का तराजू है ?" शाइलाक ने कहा—"हाँ, मैं सब सामान घर से लेता आया हूँ।"

वकील—"काटने के बाद इसकी मलहम-पट्टी करने के लिये डाक्टर को लाए हो ?"

शाइलाक—"यह मेरे इकरारनामे में नहीं है।"

वकील—"अच्छा, तो न्यायालय की आज्ञा है कि तुम एंटोनियो की छाती से एक सेर माँस काट लो, परन्तु ऐसा करने में यदि रक्त की एक बूँद भी टपकेगी, तो तुम्हारी सारी जायदाद जब्त कर ली जाएगी।"

यह आज्ञा सुनते ही शाइलाक चकरा गया। माँस ऐसे कैसे काटा जा सकता है कि रुधिर की एक बूँद भी न टपके ? इससे उसने अपने हठ को छोड़ दिया और कहा—"भाई मुझे मेरे रुपये का तिगुना लौटा दो—बस पर्याप्त है।"

वकील ने कहा—"नहीं, तुझे तो न्याय चाहिए।"

शाइलाक—"महाशय ! मुझे मेरा मूलधन ही दिलवा दीजिए। इतना ही बहुत है ! मुझे और कुछ न चाहिए।"

यह कहकर शाइलाक कचहरी से जाने लगा, किन्तु उस वकील ने उसे रोककर कहा—"अभी मुकदमा समाप्त नहीं हुआ है। अभी क्यों जाता है ? यदि कोई परदेशी यहाँ की

प्रजा का जीवन लेने का यत्न करता है, तो उसको फांसी का दण्ड दिया जाता है। तुझे तो न्याय ही चाहिए।"

यह शब्द सुनते ही शाइलाक 'हाय रे' कहकर रो पड़ा और दया के लिये प्रार्थना करने लगा। उदार एंटोनियो ने राजा से प्रार्थना की कि उसे फांसी न दी जाए।

वह वकील कौन था? पुरुष-वेष में पोर्शिया थी। उसने कचहरी से एकदम घर जाकर वेष बदल लिया और जब बेसेनियो घर आया, तब उसने अपनी शादी की अंगूठी माँगी। लेकिन बेसेनियो देता कहाँ से? वह तो अंगूठी वकील को मेहनताने में दे चुका था। पोर्शिया ने वह अंगूठी अपनी अंगुली से निकालकर बेसेनियो को दी। बेसेनियो ने उसे पहचाना और समझ गया कि यह सब उपकार पोर्शिया ने ही किया है। हर्ष से उसके आँसू बहने लगे।

तीरंदाज

एक था तीरंदाज। तीर ऐसा चलाता कि दौड़ते हिरन को मार गिराता और तैरती मछली को बींध देता। जो पत्ता बताते, उसी को डाल से नीचे गिरा देता। सेब को इस तरह ताकता कि बीच से बराबर दो फाँक हो जातीं। चाहे सेब बीस गज दूर हो, चाहे पचास गज! सारे गाँव में उसकी बराबरी का कोई न था। पूरी सरहद में वह अकेला ही एक तीरंदाज था। देश भर में उसका नाम था। सब कहते—"टेल-सा तीरंदाज कोई नहीं है। और-और तीरंदाज हैं, लेकिन टेल की बराबरी कोई नहीं कर सकता।"

टेल का पूरा नाम विलियम टेल था। उसके गाँव का नाम था बर्गलेन और देश स्वीजरलैंड। सब नाम नये लगते हैं, न बच्चो? ये नाम हमारे देश के नहीं हैं—समुद्र के उस पार के देश के हैं।

टेल के दो लड़के थे। एक का नाम था विलियम और दूसरे का नाम वाल्टर। जैसा बाप था, वैसे ही उसके दोनों बेटे थे। विलियम बहादुर था और वाल्टर भी वीर था। फिर भी उनमें वाल्टर को तो शेर का बच्चा ही समझो!

रविवार का दिन था। टेल अपनी ससुराल जाने के लिए तीर-कमान लिये तैयार हो रहा था। इतने में वाल्टर दौड़ा आया। बोला—"दादा कहाँ जा रहे हैं?"

"तेरे नाना के घर। तू चलेगा?"

"हाँ चलूँगा। लेकिन अम्माँ कहें तब न! अम्माँ मैं जाऊँ?"

"हाँ, जाओ बेटा! मैं भला क्यों रोकूँगी?"

टेल ने कहा—"तो वाल्टर, जल्दी तैयार हो लो, नहीं तो लौटते समय अंधेरा हो जायगा।"

थोड़ी देर में वाल्टर जूते पहनकर माँ के पास आया। बोला, "अम्माँ, मैं जाता हूँ!"

"जाओ बेटा, पर अच्छी तरह जाना।"

चलते-चलते टेल से उसने कहा, "लिये तो जाते हो साथ में, पर वाल्टर की सँभाल रखना।"

टेल ने मुस्कराकर कहा, "तुम चिन्ता न करो।"

× × ×

सवेरे लाल-लाल सूरज ऊपर चढ़ता आ रहा है। दूर सामने पहाड़ियाँ दिखाई दे रही हैं, कुछ भूरी और कुछ हरी और समुद्र घर्र्र्र-घर्र्र्र करता गरज रहा है। बाप बेटे धीरे-धीरे पैर बढ़ाये चले जा रहे हैं।

लड़का बोला—"दादा, आपका तीर कितनी दूर जाता है?"

"बहुत दूर बेटा, इतनी दूर कि तू उसे देख भी नहीं सकता?"

"वह सूरज दीखता है, वहाँ तक, दादा?"

"पगले, इतनी दूर भी कहीं तीर जाता है!"

"तो उस सफेद बरफ से ढकी हुई पहाड़ी को तो छू ही सकता है!"

"नहीं बेटा, वहाँ भी नहीं।"

"तो !"

"कभी चलाकर बताऊँगा।"

"लेकिन....हाँ। दादा, कल आपकी कोई सभा थी न ?"

"हाँ बेटा, थी तो सही।"

"उसमें क्या-क्या हुआ, दादा ?"

दादा ने कहा, "उसमें जो हुआ, उसे तू क्या समझेगा। अभी तो तू बच्चा है !"

"समझूंगा क्यों नहीं, दादा। आप ही का तो बेटा हूँ।"

"सो तो ठीक है।"

"और बालक होते हुए भी देखिए, मुझे कैसा अच्छा तीर चलाना आता है।"

"मगर मेरे जैसा कहाँ आता है, बेटा ?"

"ओहो, दादा, अपने बराबर होने दीजिए। फिर तो आपसे भी बढ़कर तीर न चलाऊँ तो कहना।"

तब पिता ने सुनाया—देखो, हमारा यह देश एक दूसरी सरकार के हाथ में है। उन्होंने हमें गुलाम बना रक्खा है। लेकिन दूसरी सरकार की हकूमत कब तक सही जा सकती है ? मैंने तो कल कसम खा ली है कि इस सरकार को उखाड़ फेंकूंगा।"

"यह बात है। तो आप उसे किस तरह उखाड़ फेंकेंगे। दादा, क्या वह कोई पेड़ है ?"

"तू इसे समझ नहीं सकता।"

"नहीं कैसे समझ सकता"पर दादा वह टोपी तो देखिये। वहाँ उस ऊँचे खम्भे पर वह क्यों लटकाई गई है ? देखो तो, हवा में इधर-उधर कैसी झूल रही है।"

टेल वाल्टर की इस बात पर चुप ही रह गया। वाल्टर ने फिर पूछा, "दादा, यह टोपी यहाँ क्यों टाँगी गई है ?"

टेल ने कहा, "चुपचाप चले चलो वाल्टर। होगा कुछ।"

"नहीं-नहीं, दादा, बताइये !"

"टेल बोला, देख, मैं कहता था न कि हम गुलाम हैं। उस गस्लर को तू जानता है न ?"

"हाँ, यहाँ का राजा है न वह तो।"

"राजा काहे का ! राजा का एक नौकर—सूबा।"

"सो ?"

"वह बड़ा दुष्ट है। वह हमारा अपमान करना चाहता है। उसने ऐलान किया है कि उस टोपी के सामने सब को अपना सिर झुकाना चाहिए और सर न झुकाने वाले को पकड़ कर कैद करते हैं।"

"ऐसा है दादा, तब तो हद हो गई। ऐसे अन्यायी से पीछा छुड़ाना चाहिए। दादा, आपने जो कसम ली है, उसे ......"

× × ×

"ऐ टेल, उधर कहाँ जाते हो ! देखते नहीं ! आँखें हैं ! इस टोपी को सलाम करके जाओ !"

वाल्टर ने पूछा, "पिताजी यह हमें कौन पुकार रहा है ?"

"नई सरकार का सिपाही है, बेटा।"

सिपाही ने फिर ललकारा, 'क्यों टेल, सुनते हो या नहीं ? टोपी को सलाम किये बिना आगे नहीं जा सकते।"

"क्यों ?"

"क्यों क्या ? जानते नहीं हो, सरकार का हुक्म है !

टोपी के सामने सिर झुकाये बिना कोई आगे नहीं बढ़ सकता।"

टेल ने गुस्सा दबाते हुए कहा, "भाई जाने भी दो न ?"

"जाने कहाँ दें ? हुक्म है, हुक्म !"

टेल अपने गुस्से को अब दबा न सका। बोला, "हुक्म, राजा का हुक्म तो यह है नहीं। यह तो उस गस्लर का हुक्म है। मैं उसे नहीं मानूँगा।"

"नहीं मानेगा ! क्यों ? देखना, सिर झुकाये बिना आगे बढ़ा तो अच्छा न होगा। टोपी का अपमान करना सहल नहीं है। टोपी को सिर झुका कर आगे बढ़ सकते हो वरना नहीं...!"

"सलाम ! इस सड़ियल टोपी को सलाम ! उस जालिम की टोपी के आगे सिर झुकाना ! नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। इस टोपी के आगे मेरा सिर नहीं झुकेगा, कभी नहीं झुकेगा।"

सिपाही टेल को पकड़ने दौड़ा। इतने में आस-पास लोगों की भीड़ बढ़ गई और शोर मच गया। वे सब टेल को यों पकड़ कर क्यों ले जाने देते ? वे तो प्रजा के आदमी थे। लेकिन गस्लर के सिपाही बड़े बदमाश निकले। झूठमूठ ही लगे चिल्लाने और दौड़-धूप करने कि—"अरे दौड़ो, दौड़ो, दंगा हो गया, दंगा ! बगावत हो गई बगावत !" पर असल में वहाँ न तो दंगा ही था, न बगावत ही। लेकिन बदमाश तो इसी तरह बदमाशी किया करते हैं !

× × ×

और गस्लर का रौब कुछ कम नहीं था। घमंड तो उसका कहीं समाता ही नहीं था। एक हाथ में घोड़े की लगाम और दूसरा हाथ मूछों पर। हकूमत का भूत उस पर सवार था। आँखें शराबी की सी दिखाई पड़ती थीं।

बेचारे गरीब लोग ! हाकिम के डर से काँपते थे। गस्लर को आता देख फौरन चिल्ला उठे—"रास्ता छोड़ो, जाने दो, पीछे हटो, सरकार आ रहे हैं।"

गस्लर ने तपाक से पूछा—"कहाँ है वह दंगई बदमाश ?"

सिपाही ने आगे बढ़कर अदब से कहा, "यह रहा वह घमंडी आदमी। सरकारी टोपी को सलाम करने से यह इंकार करता है। सरकार का द्रोही है यह ! क्या यह मामूली राजद्रोह है ?"

गस्लर की आँखों से आग बरस रही थी। सारा शरीर गुस्से के मारे काँप रहा था। कड़कती आवाज में बोला, "मेरे हुक्म का अपमान ! टेल, क्या बात है ? तुम और मेरा हुक्म मानने से इंकार करते हो ?"

टेल ने सिर उठा कर गर्व से कहा, "मैं इस सड़ियल टोपी को सिर नहीं झुकाऊँगा। हर्गिज नहीं।"

"जानता नहीं कि मैं सारे मुल्क का हाकिम हूँ। मेरा कहना मानना होगा और सलाम करना होगा। नहीं तो तेरी जान को खतरा है।"

"खतरा ! जान की मुझे परवाह नहीं है। जब से मैंने इस जालिम सरकार को उखाड़ फेंकने की कसम ली है, तब से सर तो हथेली पर लिए घूमता ही हूँ। मारना हो तो मार डालो। पर तुम मेरे मुर्दे को भी टोपी के आगे झुकाना चाहो, तो नहीं झुका सकोगे। फिर जब तक टेल जिन्दा है, टोपी को सलाम कैसे कर सकता है ?"

टेल की इस बहादुरी से दुश्मन भी मन में यह कह उठे, "शाबाश, टेल, शाबाश ! धन्य है तेरी देश-भक्ति को ! धन्य है तेरे देश-प्रेम को !"

गस्लर ने नजर दौड़ाकर इधर-उधर देखा। वह पक्का धूर्त था और साथ ही बड़ा चालाक और निर्दय भी। उसने भाँप लिया कि लोग टेल के साथ हैं; तो बात फेर कर बोला, "क्यों रे टेल, मैंने सुना है, तू एक बड़ा तीरंदाज है। क्या यह सच है ?"

नन्हा-सा वाल्टर एकदम बोल उठा—"जी, बात बिल्कुल सच है। पिताजी तीर तो ऐसा फेंकते हैं कि दूर के सेब को बीच से काट गिराते हैं और बड़ी सफाई के साथ।"

गस्लर ने पूछा, "टेल, यह लड़का तेरा है।"

"जी हाँ, यह मेरा लड़का है।"

"तेरे कितने लड़के हैं ?"

"दो।"

"यह तुझे बहुत प्यारा है, क्यों ?"

"प्यारे तो दोनों ही हैं। परन्तु यह छोटा है, इसलिए ज्यादा प्यारा है।"

गस्लर ने कहा, "टेल, आज देखूँगा तेरी तीरंदाजी ! यह सेब मैं तेरे लड़के के सिर पर रख दूँगा। तुझे पचास गज दूर खड़े होकर इसे बींधना होगा। याद रखना घमंडी तीरंदाज ! अगर निशाना चूक गया तो तेरे धड़ पर सिर न होगा।"

"मेरे बच्चे वाल्टर के सिर पर रक्खा गया सेब मैं बींधू ?"

"नहीं बींधेगा तो जायगा कहाँ ?

टेल तो हैरत में आ गया। दुष्ट गस्लर की चाल वह समझ गया। बोला, "आप यह क्या कह रहे हैं ? ऐसी भयंकर बात ? खुद अपने लड़के पर निशाना ताकूँ ? नहीं, नहीं,

मुझ से यह नहीं होगा। परवाह नहीं, अगर जान चली जाय, लेकिन मैं यह काम कभी न करूँगा।

"नहीं टेल, सेव तो तुझे बींधना ही पड़ेगा। मैं हुक्म देता हूँ। तैयार हो जा। देख, देर न लगा।"

"क्या मैं अपने प्यारे बच्चे का अपने ही हाथों खून करूँ? हे, भगवान!"

गस्लर ने गम्भीर होकर कहा, "अपने भगवान को एक ओर रख और तैयार हो।"

टेल बोला, "आपके हृदय नहीं है क्या? आपके भी तो बाल-बच्चे हैं? पिता के प्रेम को आप जानते हैं?"

"चल, तैयार हो जा। मुझे तेरी बकवास नहीं सुननी। आस्ट्रिया की सरकार को उलटने वाला टेल कितना बहादुर है, सो देखूं तो सही?"

"हे भगवान!"

टेल ने दिल मजबूत किया। बोला, "अच्छा, पहले इस लड़के को बाँधो, और फिर इसके सिर पर सेव रक्खो।"

वाल्टर ने कहा, "क्या, मुझे बाँधोगे? नहीं, मैं बँधूंगा नहीं। जहाँ कहोगे, चुपचाप बिना हिले-डुले खड़ा रहूँगा।"

तो उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दो। बेचारा डरेगा।" गस्लर ने कहा।

"पट्टी किसलिए? क्या आप समझते हैं कि मैं तीर से डरता हूँ? बिल्कुल नहीं। देखना तो सही, आँखों के पलक तक न हिलने दूँगा।

पिता का हृदय हर्ष से फूल उठा और साथ ही शोक से फटने भी लगा।

टेल ने वाल्टर को देखा।

वाल्टर ने टेल को देखा।

वाल्टर बोला, "दादा, घबराइए नहीं। मैं नहीं डरूँगा। आप अपना तीर छोड़िए।"

वाह, इसी का नाम है, बहादुर बाप का बहादुर बेटा!

× × ×

सब शांत थे। न कोई हिलता था, न डुलता था। सब की छातियाँ धड़क रही थीं। साँस धीरे-धीरे चल रही थी। सब की आँखें टेल पर गड़ी थीं। कभी वाल्टर को निहार लेती थीं। मन में होता था, "क्या होगा? सेब बिधेगा? कहीं लड़का तो नहीं बिध जायगा? अरे, पापी गस्लर; तेरा सत्यानाश हो! ...लेकिन...टेल बहादुर है, उसका निशाना चूकेगा नहीं!... हे भगवन् तू लाज रखना।"

वाल्टर के सिर पर सेब था। वह न हिलता था, न डुलता था। मानो बेजान पुतले पर सेब रक्खा हो। वाल्टर की आँखें टेल पर थीं, मानो काँच की आँखें जड़ दी हों।

सब स्तब्ध हो गए।

टेल ने ईश्वर से प्रार्थना की। मन स्थिर किया। आसमान की तरफ देखा। दुष्ट गस्लर की तरफ देखा। बेटे की तरफ देखा—

चारों ओर सन्नाटा था।

देखने वालों के दिल फटे जा रहे थे।

टेल ने तीर-कमान हाथ में लिये। डोरी खींचकर टंकार किया और तीर चढ़ाया।

लोग विकल हो उठे। उनके मुँह से हलकी-सी आह निकली—"गस्लर का सत्यानाश हो?"

टेल ने एक पैर आगे रक्खा, दूसरा पैर पीछे जमाया। टेल तैयार, पूरी तरह तैयार। लेकिन बेटे पर बाप तीर कैसे चलाए?

सामने से आवाज आई—"दादा, तीर छोड़िए न! डरने की कोई बात नहीं।"

सनननन् करता हुआ तीर चला।

सन्नाटे को बेधती साथ ही एक ध्वनि हुई—"शाबाश टेल! शाबाश!!, वाल्टर! शाबाश!!!"

वाल्टर को सब ने हाथों-हाथ उठा लिया।

वाल्टर ने पूछा—"दादा कहाँ है?"

टेल तो बेहोश पड़ा था। पास जाकर वाल्टर ने कहा, "दादा उठिए, सेब बिंध गया।"

टेल उठा, पिता-पुत्र गले मिले। आँसुओं की धारा बह चली।

वाल्टर अमर हो गया। और टेल भी अमर हो गया।

आज उस जगह एक पुतला है। हाथ में तीरकमान है, पास एक लड़का खड़ा है। लोग कहते हैं—"यह पुतला वीर विलियम टेल का है और पास में उसका बेटा—वह निडर वाल्टर खड़ा है।"

कृतघ्न शिष्य

एक आदमी कुश्ती की विद्या में बहुत बढ़ा-चढ़ा हुआ था। वह इस विद्या के पूरे तीन सौ साठ दाँव-पेंच जानता था और हर दिन कोई न कोई नया करतब दिखाया करता था। यों तो उसके बहुत से शागिर्द थे, मगर वह एक खूबसूरत नौजवान शागिर्द को बहुत चाहता था और उसने उसे धीरे-धीरे तीन सौ उनसठ दाँव-पेंच सिखा दिये थे, वक्त-जरूरत के ख्याल से सिर्फ एक अपने लिए छिपा रखा था।

इस तरह वह नौजवान कुश्ती की कला में इतना बढ़ गया कि कोई उसका मुकाबिला करने वाला न रहा। आखिर एक दिन वह लगा बादशाह के सामने शेखी बघारने और बातें मारने—"मैं ताकत में उस्ताद से भी आगे हूँ और कुश्ती के दाँव-पेंच तो उनके बराबर ही जानता हूँ। वे एक तो मेरे उस्ताद हैं, दूसरे उम्र में मुझ से ज्यादा हैं, इसलिए मैं उनका लिहाज करता हूँ ; वरना उनको क्या समझूँ।"

बादशाह को उस जवान की यह डींग, यह शेखी बहुत बुरी मालूम हुई। उसने हुकम दिया कि उस्ताद और शागिर्द के हुनर की परीक्षा हो जानी चाहिए। इस काम के लिए एक लम्बा-चौड़ा मैदान ठीक किया गया जहाँ समय पर वज़ीर, अमीर-उमरा और नगर के दूसरे लोग एकत्र हुए। वह जवान मस्त हाथी के समान झूमता-झामता इस तरह अखाड़े में उतरा कि अगर उस वक्त लोहे का पहाड़ भी उसके सामने आ

जाता, तो वह शायद उसे जड़ से उखाड़कर फेंक देता। उस्ताद जानता था कि जवान मुझ से अधिक ताकतवर है, इसलिए उसने उस पर वही दाँव चलाया, जो ऐसे ही मौके के लिए उसने छिपा रखा था। जवान तो दाँव का काट जानता ही नहीं था, अब वह क्या करे ? इतने में उस्ताद ने कृतघ्नता के उस बोझ को उठाया और अपने सिर के ऊपर ले जाकर जमीन पर दे मारा।

सब लोग वाह-वाह कर उठे। बादशाह ने उस्ताद को वस्त्र आदि सहित बहुत-कुछ इनाम दिया, और उस कृतघ्न जवान को बुरी तरह फटकारा। जवान शर्मिन्दा होकर बोला—"हजूर, उस्ताद ने ताकत या होशियारी से विजय

हासिल नहीं की। यह विजय तो उन्होंने एक मामूली दाँव की बदौलत पाई है, जो मुझ से उन्होंने छिपा रखा था। भला इसमें मेरा क्या कसूर !"

उस्ताद ने हँसकर कहा—"प्यारे बेटे ! मैंने इसी दिन के लिए तो यह दाँव तुम से छिपा रखा था। बुजुर्गों का कहना है—'दोस्त के हाथों इस तरह न बिक जाओ कि अगर वह कभी दुश्मन बन जाए तो तुम्हारा कुछ बिगाड़ कर सके।' "

रूसी लोककथा

सुनहली मछली

रूस में समुद्र के किनारे एक बूढ़ा मछेरा रहता था। वह मछलियाँ पकड़ कर अपनी गुजर-बसर किया करता था। समुद्र के किनारे ही एक ऊँची चट्टान पर उसकी छोटी-सी झोंपड़ी थी। बूढ़ा बड़ा ही नेक और सन्तोषी व्यक्ति था, परन्तु उसकी बुढ़िया बड़ी लोभी और चिड़चिड़े मिजाज की थी। दुनिया में कई लोगों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे अपनी वर्तमान दशा से सन्तुष्ट नहीं रहते। उनके जीवन में हाय! हाय! मची रहती है। इस बुढ़िया का स्वभाव भी ऐसा ही था। बेचारा बूढ़ा मछेरा दिन भर आँधी-तूफान में समुद्र के किनारे मछलियाँ पकड़ता और शाम को जब मछलियों से भरी हुई टोकरी लेकर घर लौटता, तो वह बुढ़िया उसका बोझा उतारने तथा जाल सुखाने में मदद न करके, उल्टी उसे जली-कटी सुनाती—"आ हो! आ गये दिन भर मटरगश्ती करके, मैं तो घर का काम करते-करते थक गई, और एक तुम हो कि सारा दिन समुद्र के किनारे बैठे बाँसुरी बजाते रहते हो। बस दिन भर में इतनी ही मछलियाँ पकड़ी हैं? दीखता है तुम्हें जाल डालना ही नहीं आता।"

बेचारा बूढ़ा अपनी बुढ़िया की किटकिट का आदी हो गया था। वह उसकी बात को अनसुनी कर, खाना खाकर भगवान को धन्यवाद देता और सो रहता। एक दिन की बात है कि उसने समुद्र में मछली पकड़ने को जाल डाला, पर कोई भी मछली जाल में नहीं आई। निराश होकर जब

वह जाल समेटने लगा, तो उसे वह कुछ भारी प्रतीत हुआ, पर मछली तो उसमें कोई दीखती न थी। पूरा जाल खींचने के बाद, उसने जब उसे खोला, तो उसमें एक प्यारी-सी, सुन्दर-सी सुनहली मछली निकली। बूढ़े मछेरे ने उसे हाथ में उठा लिया और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा। थोड़ी देर

बाद वह सुनहली मछली सचेत होकर बोली, "बूढ़े बाबा! तुम मुझे छोड़ दो, मैं समुद्र की राजकुमारी हूँ। अगर तुम दया करके मुझे छोड़ दोगे, तो तुम मुझ से जो माँगा करोगे, तुम्हें दिया करूँगी, तुम्हारी सब गरीबी दूर कर दूँगी।" बूढ़े मछेरे को नन्ही सुनहली मछली पर दया आ गई और उसने उसे समुद्र में छोड़ दिया। सुनहली मछली लहरों पर किलोलें करती हुई अपने राजभवन में वापस आ गयी। वहाँ उसकी सखियाँ और दासियाँ घबड़ाई हुई सी उसकी बाट जोह रही

थीं। राजकुमारी के सकुशल वापिस लौट आने पर राजमहल में खूब धूम-धाम से उत्सव मनाया गया—सब सखियों ने मिल कर खूब गीत गाये। वे झुमर बना कर अठखेलियां करती हुई खूब नाचीं।

इधर शाम को जब बूढ़ा मछेरा खाली हाथ घर पहुँचा, तो उसकी बुढ़िया ने उसे बहुत बुरा-भला कहा। जब उसके गुस्से का उबाल निकल गया, तो बूढ़े ने उसे सुनहली मछली की बात बताई। बुढ़िया उस समय एक लकड़ी की टूटी नांद में कपड़े धो रही थी। उसने चिढ़कर कहा—"उहूँ,

यह तो सब झूठी बातें है, मैं तो तब जानूं जब तुम लकड़ी की एक नई नांद ही मांग कर ला दो।"

बस दूसरे दिन बूढ़े ने समुद्र के किनारे जाकर पुकारा—"हे सुनहली मछली, तुम कहाँ हो, जरा मेरी प्रार्थना सुनने की कृपा करो।" बूढ़े का इतना कहना था कि दयालु सुनहली मछली लहरों पर चढ़ कर अठखेलियाँ करती हुई, तुरन्त वहाँ आ पहुँची। उसे देख कर बूढ़े ने तीन बार धरती छू कर उसका अभिवादन किया और बोला—"हे समुद्र की राजकुमारी! मेरी बुढ़िया को लकड़ी की एक बढ़िया नाँद चाहिए।"

"उसकी इच्छा पूर्ण होगी।" ऐसा कह कर सुनहली मछली फिर अन्तर्ध्यान हो गई। घर आकर बूढ़े ने देखा कि पुरानी नाँद की जगह शीशम की लकड़ी की एक बढ़िया नाँद रखी हुई है। बूढ़े ने सुनहली मछली को बार-बार धन्यवाद दिया। पर वह असन्तोषी बुढ़िया इससे खुश नहीं हुई। वह उपेक्षा की दृष्टि से बोली—"लकड़ी की नाँद कौन बड़ी चीज है जिसके लिये तुम दस बार धन्यवाद दे रहे हो। कल तुम जाकर उससे कहना कि इस झोंपड़ी के बदले हमें एक बढ़िया मकान चाहिए।"

दूसरे दिन सुबह अंधेरे ही उसने बूढ़े को बिना कुछ खिलाये-पिलाये समुद्र के किनारे भेज दिया। बेचारे बूढ़े मछेरे ने वहाँ आकर फिर पुकारा—"हे समुद्र की राजकुमारी! तुम कहाँ हो? मेरी प्रार्थना सुनो।"

समुद्र पर लहरें उठीं और उन पर बल खाती हुई सुनहली मछली भी आन पहुँची। बूढ़े ने अपनी टोपी से तीन बार धरती को छू कर नमस्कार किया और बोला—"ए मेरी सुनहली मछली! मेरी बुढ़िया को इस झोंपड़ी में रहने में बड़ा कष्ट होता है, उसे एक अच्छा पक्का घर चाहिए।"

"उसकी इच्छा पूरी होगी।" यह कह कर सुनहली मछली फिर गायब हो गई। घर आकर बूढ़े ने देखा कि टूटी-

फूटी झोंपड़ी के बदले एक बढ़िया मकान खड़ा है। उसमें खाने-पीने और रहने के सभी सुख-साधन हैं। आँगन में गाय बँधी है। घर के आस-पास मुर्गियाँ दाना चुग रही हैं। चारों ओर अनाज के खेत लहलहा रहे हैं। यह सब देख कर बूढ़ा बुढ़िया से बोला, "अब तो हम एक अच्छे खाते-पीते किसान के सदृश सुख से रहेंगे। भला अब हमें किस बात की कमी है।"

खैर, बूढ़े के कुछ दिन तो चैन से कटे, पर वह असन्तोषी बुढ़िया अपनी वर्तमान दशा से कभी भी प्रसन्न नहीं होने वाली थी। उसे यही पछतावा था कि इस झोंपड़ी के बदले उसने एक बड़ी हवेली क्यों नहीं माँग ली। वह सोचने लगी कि एक किसान की औरत की तरह मुझे अपना सब काम खुद ही करना पड़ता है। खेतों की देखभाल, गाय की सेवा, घर का धंधा यह सब क्या थोड़ा काम है। किसानों से तो रईस अच्छे, जिन्हें कुछ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती। सो उसने एक दिन अपने बूढ़े से फिर कहा—"मैं मेहनत-मजदूरी की इस जिन्दगी से तंग आ गई हूँ। अब मैं भी रईसों की स्त्रियों की तरह शान-शौकत से रहना चाहती हूँ। सो तुम जाकर सुनहली मछली से कहो कि मुझे हवेली, नौकर-चाकर तथा सुख-सम्पत्ति सब से भरपूर कर दे।"

यह सुन कर बेचारा बूढ़ा मछेरा फिर समुद्र के किनारे आया और हिचकिचाते हुए उसने फिर समुद्र की राजकुमारी को पुकारा। इस बार समुद्र में अधिक ऊँची लहरें उठीं और सुनहली मछली उन पर चढ़ कर आई। बूढ़े ने धरती पर तीन बार झुक कर फिर सलाम किया और बोला—"हे मेरी दयालु राजकुमारी! मेरी बुढ़िया अब रईसों की तरह सुख और आराम की जिन्दगी बसर करना चाहती है।"

"उसकी इच्छा पूर्ण होगी"—कह कर सुनहली मछली फिर लोप हो गई।

घर लौट कर बूढ़े ने देखा कि उसके मकान के स्थान पर एक आलीशान बड़ी सी हवेली खड़ी है। उसके कमरे खूब सजे हुए हैं। आठ-दस दास-दासियाँ बुढ़िया की सेवा में हाजिर हैं। कोई उसके बाल संवार रही है, कोई शीशा लिये खड़ी है। एक दासी नई पोशाक पकड़े हुए है। दूसरी नये जोड़े जूते पकड़े खड़ी है। मेज पर तरह-तरह के भोजन प्लेटों में सजे हुए हैं। तिजोरियों में धन-दौलत और आभूषण भरे हुए हैं। यह सब देख कर बूढ़े ने सुनहली मछली को मन ही मन बार-बार धन्यवाद दिया।

पर इतनी धन-दौलत पाकर बुढ़िया के मिजाज सातवें आसमान पर चढ़ गये। वह जरा-जरा सी बात पर अपने बूढ़े को जली-कटी सुनाने लगी; यथा—इस घर में यह कसर है, यह कमी है, यह चीज नहीं है, वह चीज नहीं है। तुम्हारी सुनहली मछली को इस बात का ध्यान ही नहीं रहा, वह फलानी चीज देनी भूल गई। बेचारा बूढ़ा चुपचाप अपनी बुढ़िया की बकवास सुनता रहता। उसे उसकी मूर्खता पर तरस भी आता, पर वह कुछ कह कर लड़ाई अधिक बढ़ाना नहीं चाहता था।

एक दिन बुढ़िया को बाहर घूमने का शौक चर्राया। उसने अपने नेक पति को घोड़ा-गाड़ी जोत कर लाने का हुक्म दिया। बेचारे बूढ़े ने गाड़ी जोत कर दरवाजे के सामने लाकर खड़ी कर दी। उस दुष्ट बुढ़िया के गाड़ी में बैठते ही घोड़े बहुत उचकने लगे, पर नेक बूढ़े के रास संभालने पर वे शान्त होकर खड़े हो गये। बुढ़िया के हुक्म देने पर बूढ़े ने गाड़ी हाँक दी। कई मीलों की सैर करके जब बुढ़िया लौटी, तो घर आकर वह बूढ़े पर और भी बिगड़ी—"मैं गाड़ी में घूमना पसन्द नहीं करती क्योंकि सड़कों पर धूल उड़ती है। फिर जिस प्रकार लोग रानी को झुक-झुक कर सलाम करते हैं, उस

प्रकार लोग मेरे सम्मान के लिये नहीं झुके । मैं ऐसा अपमान-जनक जीवन पसन्द नहीं करती । तुम कल ही जाकर अपनी सुनहली मछली से कहना कि वह मुझे एक महारानी बना दे ।"

बेचारा बूढ़ा अपनी बूढ़ी के दुराग्रह से तंग आ गया था । वह सुनहली मछली को परेशान नहीं करना चाहता था, पर न जाने में भी बूढ़े की खैर नहीं थी । उसे मालूम था कि बिना वरदान माँगे लौटने पर बुढ़िया उसे घर में न घुसने देगी । उसने आगा-पीछा सोच कर फिर पुकारा—"हे मेरी सुनहली राजकुमारी ! कृपया मेरी प्रार्थना सुनो ।" इस बार समुद्र में बहुत ऊँची-ऊँची लहरें उठीं और अन्त में एक ऊँची लहर पर चढ़ कर सुनहली मछली आई और उसने पूछा—"अब तुम्हारी बुढ़िया को और क्या चाहिए ?" बूढ़े ने डरते-डरते अपनी लोभिन बुढ़िया की इच्छा बता दी । "अच्छा, जाओ बुढ़िया की यह इच्छा भी पूरी होगी ।" यह कह कर सुनहली मछली फिर ओझल हो गई ।

घर लौट कर बूढ़े ने देखा कि हवेली के स्थान पर एक महल खड़ा है । उसके चारों ओर ऊँचा परकोटा है । परकोटे से लग कर गहरी खाई खुदी हुई है । उस दुर्ग में महल के सबसे सुन्दर भाग में बुढ़िया दास-दासियों से घिरी हुई बैठी है । सिर पर वह मुकट पहने हुए है । राजसी पोशाक और ताज पहन कर वह बड़ी शान से सिंहासन पर बैठी हुई है । हर दरवाजे पर बरछा ताने सिपाही पहरे पर खड़े हैं । बूढ़े ने भी वहाँ जाकर अदब से बूढ़ी महारानी को झुक कर सलाम किया । अब बुढ़िया का सिर इतना फिर गया था कि अपने जिस नेक पति के कारण उसे आज महारानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उसी को अपने सामने देख कर वह बिगड़ने लगी । उसने अपने पहरेदारों को कहा—"इस भिखमंगे बूढ़े को महल में से धक्के मार कर बाहर निकाल

दो।" बेचारा बूढ़ा पहरेदारों के धक्के खाकर महल के बाहर आकर थक कर गिर पड़ा। उसकी टोपी पीछे को लुढ़क गई। एक दयालु दासी ने वह टोपी उठा कर चुपके से लाकर उसे दी। बेचारा बूढ़ा अब घोड़ों के अस्तबल में रहने लगा। उसे अपनी बूढ़ी के अभिमान पर रह-रह कर खेद होता था। जब वह सुनता कि बुढ़िया महारानी अपने दास-दासियों को ठोकरों से उड़ाती है, भूल करने पर उन्हें हंटरों से उधेड़ती है, तो उसे और भी दुख होता।

एक दिन रात को समुद्र में बड़ा तूफान आया। बूढ़ी महारानी उस समय सोने जा रही थी। उसे समुद्र का गर्जन-तर्जन बिलकुल पसन्द नहीं आया। कुछ देर अपने महल की खिड़की में से वह समुद्र की उछल-कूद देखती रही। फिर उसके हृदय में विचार आया कि 'अगर मैं समुद्र की रानी बन जाऊँ, तो समुद्र को भी मेरी आज्ञा माननी पड़ेगी और फिर वह इस तरह मेरे आगे गरजे-तरजेगा नहीं। समुद्र की रानी बन जाने के बाद मेरा हुक्म सुनहली मछली पर भी चलेगा, फिर भला मुझ से बढ़ कर इस दुनिया में और दूसरा कौन हो सकता है?'

बस दूसरे ही दिन बुढ़िया ने अपने सिपाहियों को हुक्म दिया कि उस बूढ़े मछेरे को हाजिर करो। उसके कहने की देर थी कि जल्लाद-से सिपाहियों ने बेचारे बूढ़े को नंगे पाँव और नंगे सिर घसीटते हुए वहाँ लाकर खड़ा कर दिया। वह नेक बूढ़ा अपने अस्तबल में ही खुश था, क्योंकि उसे वहाँ चैन से तो रहना मिलता था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब बूढ़ी महारानी को किस बात की और कमी रह गई है, कौनसी न्यामत दुनिया की थी, जो उसकी पहुँच से बाहर थी! वह आश्चर्य कर रहा था कि अब महारानी बन कर भी इसकी कौनसी इच्छा पूरी होनी बाकी रह गयी है!

बूढ़ी महारानी ने बूढ़े को झकझोरते हुए कहा—"तुम इसी समय समुद्र-तट पर जाओ और सुनहली मछली को हुक्म दो कि मेरी महारानी समुद्र पर भी शासन करना चाहती है, और उसकी इच्छा है कि तुम भी अपनी सखी-सहेलियों सहित उसकी सेवा में हाजिर हो।" बूढ़े को आश्चर्य से अपनी ओर ताकते देख बुढ़िया महारानी ने डपट कर कहा—"देख क्या रहे हो? जाओ, जाओ, इसी समय जाओ। मेरा हुक्म है, तुम्हें जाना ही होगा।"

बेचारा बूढ़ा दुखी और खिन्न मन से समुद्र के किनारे आया। इस समय आकाश में बादल छाये हुए थे, बिजली कड़क रही थी। बूढ़े ने डरते-डरते जैसे ही सुनहली मछली को पुकारा, समुद्र में भारी तूफान उठ खड़ा हुआ। लहरों ने समुद्र-तल पर उथल-पुथल मचा दी। मूसलाधार पानी बरसने लगा। बूढ़ा इस आँधी-तूफान में भीगता हुआ खड़ा था। थोड़ी देर बाद भयंकर गड़गड़ाहट हुई और काली-काली गरजती हुई लहरों पर चढ़ कर सुनहली मछली आ पहुँची। उसने एक राजकुमारी के सदृश शान से पूछा—"बूढ़े बाबा! अब महारानी बनने के पश्चात् भी क्या तुम्हारी बूढ़ी की कुछ साध बाकी रह गई है?"

बूढ़े ने धरती पर तीन बार झुक कर सलाम करके डरते हुए अपनी बुढ़िया की अभिमान-भरी इच्छा सुना दी। यह सुन कर समुद्र ने मानो क्रोध भरी हुंकार ध्वनि की। लहरें गरजने लगीं और सुनहली राजकुमारी सिंहासन सहित लोप हो गई।

कुछ जवाब न पाकर बूढ़ा जब चुपचाप महलों की ओर वापस आया तो वहाँ का परिवर्तन देख कर वह हैरान रह गया। न अब वहाँ महल था, न दास-दासियाँ, उनके स्थान

पर थी वही पुरानी झोंपड़ी और वही टूटी नाँद। असन्तोषी बुढ़िया उसी टूटी नाँद में बैठी कपड़ों में साबुन लगा रही थी। यह देख कर बूढ़ा मछेरा एक दार्शनिक के सदृश बोला—"असन्तोषी मनुष्य संसार में कभी भी सुखी नहीं रह सकता, अभिमानी का सिर नीचा होकर ही रहता है।"

हीरा-कुणी

ग्वालिन का नाम था हीरा, और उसकी गाय का नाम था कुणी।

हीरा का एक मास का बच्चा था। गाय की भी एक मास की बछिया थी। हीरा रायगढ़ के पर्वत पर चढ़कर राजा को दूध देने जाया करती थी। राजा गाय का दूध पीकर आनन्द मनाता था। बछिया रँभाती रहती थी। हीरा के हृदय में बछिया के लिए किसी दिन भी वेदना नहीं जागती थी। दूध दुहने के समय कुणी गाय रह-रहकर बछिया को पुकारती थी। बछिया दौड़कर दूध पीने के लिए आना चाहती थी पर हीरा उसे लौटा देती, उसे खूँटे में बाँधे रखती थी। इस प्रकार बछिया अपनी माँ को नहीं पा सकती थी और दूध के लिए तरसती रहती थी।

हीरा का ध्यान उधर कभी जाता ही नहीं था। वह तो प्रातः-सायं दूध दुहकर, उसे बेचने के लिये राजा के किले में चली जाती थी। रात होने से पहले ही हीरा किले से लौट आती थी। पहले, अपने बच्चे को दूध पिलाती, थपकियाँ देकर सुला देती। फिर बछिया को पकड़कर कुणी के पास ले जाती। बछिया लपककर अपनी माँ की गोद में जा पहुँचती, पर जरा-सा ही दूध पी पाती थी। कुणी अपनी बछिया के तन को चाटकर सुला दिया करती थी। बछिया भूखी रह जाती थी और राजा दूध पीकर मौज मनाता था। इसी तरह दिन बीतते रहे।

एक दिन हीरा दूध बेचने के लिए किले में गई। वहाँ दूध का मूल्य चुकाने में राजा के कोषाध्यक्ष ने देर लगा दी। संध्या को घण्टी बज गई। दुर्ग का द्वार बन्द कर दिया गया। हीरा बोली—"द्वार खोलो।"

पहरेदार ने कहा—"आज्ञा नहीं है।" हीरा का हृदय बच्चे के लिए छटपटाने लगा! वह रोकर कहने लगी—"मेरा मुन्ना भूखा है, तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, फाटक खोल दो।" राजा के कठोर-हृदय पहरेदार ने द्वार नहीं खोला। बालक को दूध पिलाने के लिए माँ की छाती वेदना से फटने लगी। उसने फाटक की जंजीर पकड़ कर हिलाई और कहा—"अरे भाई, एक बार के लिए द्वार खोल दो।" पहरेदार ने फिर कहा—"हुक्म नहीं है।"

सूर्य अस्ताचल के पीछे हो लिया। पंछी पंख फैलाकर अपने बसेरों की ओर उड़ चले। किले के बीच में, देवमन्दिर के ऊपर सांझ का तारा दीखने लगा। हीरा रोकर मन ही मन कहने लगी—"काश, मुझे पंख मिले जाते और मैं अपने लाल के पास पहुँच जाती! वह दूध पिए बिना बिलख रहा होगा।"

पर्वत के नीचे तराई में हीरा का घर है। कुणी गाय अपनी बछिया को पुकार रही है। वहाँ से उसकी पुकार हीरा को सुन पड़ी। वह दूध की मटकी पटक कर उठ खड़ी हुई। वह निर्भय मन से किसी रास्ते की खोज करने लगी।

रायगढ़ के किले की दीवार पुरानी थी। एक स्थान पर किनारे से पहाड़ धँस गया था। एक पीपल का पेड़ दीवार पर झुका था। उसी स्थान पर आधी रात में चाँदनी पड़ रही थी। हीरा ने चाँदनी में देखा कि चट्टानों की नोकें घड़ियाल के बड़े-बड़े दाँतों की तरह चमक रही हैं। हीरा उसी राह से धीरे-धीरे उतरने लगी—एक-एक पत्थर पर पैर टिका कर। उसके बाद एक पगडंडी से हीरा अपने घर जा पहुँची।

उस समय रात का तीसरा पहर बीत रहा था, सवेरा होने को था। बच्चा रो-रो कर सो गया था। हीरा सोए बच्चे को उठाकर, छाती से लगाकर दूध पिलाने लगी। उधर रस्सी का बंधन तोड़कर कुणी की भूखी बछिया भी दूध पीने लगी थी। हीरा ने उस दिन उसे बाँधा नहीं—उसकी माँ के पास से हटाया नहीं।

सवेरा हो गया! दिन चढ़ने लगा। रायगढ़ के राजा ने नींद से जागकर दूध माँगा। हीरा दूध नहीं लाई थी। हीरा के घर से दूध लाने के लिए सिपाही दौड़ाया गया। हीरा कहने लगी—"दूध नहीं है, सूख गया है।"

वह ठहरा राजा का सिपाही! वह क्योंकर मानने लगा था। हीरा को पकड़ कर वह किले में ले आया। राजा ने हीरा

से सारी कहानी सुनी। उसका दिल द्रवित हुआ। राजा ने हीरा को एक गाँव जागीर में दे दिया और जिस रास्ते से हीरा अपने जीवन को खतरे में डालकर अपने बच्चे के पास जा पहुँची थी, राजा ने उस दुर्गम पथ का नाम रखा—'हीरा-कुणी'।

हीरा ने दूध बेचने का काम छोड़ दिया। वह खेती-बाड़ी करने लग गई।

भूत की खोज

सनीचर का दिन था। बैठक जमी हुई थी। गाँव के तरह-तरह के लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। इसी समय सारी कहानियों में श्रेष्ठ, भूतों की कहानी, शुरू हो गयी। पल भर में सभी का ध्यान इस ओर खिंच गया। सभी ने बोलने वाले को घेर लिया।

पहले तो मैं लापरवाही से सुनता रहा, आखिर में तनकर बैठ गया। कहानी कहने वाले थे गाँव के ही एक बूढ़े आदमी। कहानी खत्म कर अन्त में उन्होंने कहा—"अगर किसी को भूत-प्रेत में शक हो तो वह आज श्मशान में जाकर शक मिटा डाले। आज अमावस है। आज की रात भूत को सिर्फ आँखों से देखा जा सकता है, सोही नहीं, उसकी बोली भी सुनी जा सकती है और इच्छा करने पर उससे बातचीत भी की जा सकती है।"

बूढ़े की बातें सुनकर मैं हँस दिया। बूढ़े ने मेरी ओर देख कर कहा—"आप मेरे पास आइये।"

मैं उसके पास सरक गया। उसने पूछा—"क्या आप भूत-प्रेत पर विश्वास नहीं करते?"

मैंने कहा—"नहीं।"

उस भले आदमी ने चट मेरे दाहिने हाथ को पकड़ कर कहा—"क्या आप आज रात को श्मशान जा सकते हैं?"

मैं हँस कर बोला—"जा सकता हूँ।" बूढ़ा चिढ़कर बोला—"आप शेखी मत बघारिये बाबू !"—यह कह कर उसने श्मशान का वर्णन करना शुरू किया—"यह श्मशान कुछ ऐसा-वैसा स्थान नहीं है। यह महाश्मशान है। यहाँ पर हजारों खोपड़ियाँ गिनी जा सकती हैं। इस श्मशान में हर रात को महाभैरवी अपनी साथिनों सहित खोपड़ियों से गेंद खेलती हैं और नाचती हुई घूमती है। उनके खिलखिलाकर हँसने के विकट शब्द से कई अंग्रेज जजों और मजिस्ट्रेटों के कलेजे की धड़कन बन्द हो गयी है !"

यह सुनते ही बहुतों के रोंगटे खड़े हो गये। बूढ़े ने फिर मेरी ओर देखकर पूछा—"क्यों बाबू साहब, आप जायेंगे ?"

मैंने जवाब दिया—"जाऊँगा क्यों नहीं ? किन्तु बेजानी जगह में खाली हाथ नहीं जाऊँगा, बन्दूक साथ जायेगी।"

ग्यारह बजे के करीब मैं श्मशान की ओर चल पड़ा। हाथ में बन्दूक लिए था। राह में बीती बातें सोचने में कुछ इस तरह मग्न हो गया कि यह सुध ही न रही कि कहाँ जा रहा हूँ।

अचानक सुनाई पड़ा—"बापू !" मैं एकदम चौंक उठा। आँख उठाकर देखा, सामने भूरे रंग का बालू का मैदान है। नदी की एक पतली रेखा उसे चीरती हुई चली गयी है। जगह-जगह काँस उठ आया है। अंधेरे में ऐसा जान पड़ता था—ये काँस के पौधे नहीं, एक-एक आदमी हैं। वायु नहीं, शब्द नहीं, अपनी छाती के भीतर छोड़ कर जितनी दूर भी नजर जाती थी, कहीं भी कोई आहट सुनाई नहीं पड़ती थी। जो चिड़िया 'बापू' कह कर रुक गयी थी, वह भी और कुछ नहीं बोली।

मैं पश्चिम की ओर धीरे-धीरे चला। उसी ओर वह

श्मशान था। कुछ दूर चलने पर काली-काली डालें दिखाई पड़ने लगीं। ये डालें सेमर के पेड़ की थीं। इन्हीं को पार कर आगे बढ़ना होगा। इसी समय किसी की रुलाई सुन पड़ने लगी। कुछ और दूर चलने पर वह कुछ और साफ हुई। ऐसा मालूम पड़ता था, जिस तरह माँ के गहरी नींद में सो जाने पर, छोटा बच्चा रोते-रोते थककर अन्त में रिरियाना शुरू करता है, ठीक उसी तरह श्मशान के सूनेपन में कोई रिरिया रहा हो। मैं बाजी लगाकर कह सकता हूँ कि जो इस रिरियाने की असली बात नहीं जानता हो, वह ऐसी गहरी अमावस की रात में अकेला उस ओर पैर नहीं बढ़ाना चाहेगा। वह मनुष्य का बच्चा नहीं, चमगादड़ का बच्चा था, जो अंधेरे में अपनी माँ को न देख सकने के कारण रो रहा था। और भी नजदीक जाकर देखा, ठीक यही बात थी। सेमर की डाल-डाल में अनगिनत चमगादड़ झोलों की तरह टँगे हैं और उन्हीं में का कोई शैतान बच्चा इस तरह रो रहा है।

वह रोता ही रहा और उसके नीचे से आगे बढ़ता हुआ मैं उस श्मशान के एक हिस्से में जा खड़ा हुआ। उस बूढ़े ने जो यह कहा था कि यहाँ हजारों खोपड़ियाँ गिनी जा सकती हैं, सो बात सच थी। सारा ही स्थान आदमी की हड्डियों से भरा था। गेंद खेलने के लिए खोपड़ियाँ तो अनगिनत पड़ी थीं, पर खिलाड़ी अभी तक नहीं जुट पाये थे। मेरे सिवा और भी कोई वहाँ है, यह भी मैं नहीं देख सका। मैं रेत के एक टीले पर जाकर बैठ गया। बन्दूक खोलकर उसकी नली को और एक बार जाँच करके मैंने उसे गोद में रख लिया।

एकाएक हवा का एक झोंका कितना ही रेत उड़ाता हुआ मेरे शरीर पर से निकल गया। वह खत्म भी नहीं होने पाया था कि दूसरा और फिर तीसरा झोंका ऊपर से होकर

निकल गया। मन में सोचने लगा कि भला यह क्या है ? इतनी देर तक तो लेश भर भी हवा नहीं थी।

धीरे-धीरे और जोर से हवा चलने लगी। बहुत से आदमी शायद यह नहीं जानते कि मरे हुए मनुष्य की खोपड़ी में से हवा के गुजरने से ठीक उसांस लेने का-सा शब्द होता है। देखते-ही-देखते आसपास, सामने, पीछे, चारों ओर से लम्बी-उसाँसों की झड़ी-सी लग गयी। ठीक ऐसा लगने लगा कि कितने ही आदमी मुझे घेर कर बैठे हैं और लगातार जोर-जोर से 'हाय-हाय' करके उसांस ले रहे हैं। चमगादड़ का वह बच्चा अब भी चुप नहीं हुआ था। वह और भी रिरियाने लगा। मुझे अब मालूम होने लगा कि मैं भयभीत हो रहा हूँ। मैं अच्छी तरह जानता था कि जिस स्थान पर आया हूँ, वहाँ अगर भय को दबा न सका, तो मौत तक हो जाना कोई बड़ी बात नहीं। राम नाम में विश्वास रखने वाला मेरा एक साथी बिना किसी डर-भय के ऐसे भयानक स्थान में घूम सकता था। मेरी उतनी चौड़ी छाती कहाँ ? मेरे पास राम नाम का वह अभेद कवच कहाँ ?

एकाएक किसी ने मानो पीछे खड़े होकर दाहिने कान पर उसाँस छोड़ी। वह इतनी ठंडी थी कि बर्फ की तरह मानो उसी जगह जम गयी। गर्दन उठाये बगैर ही मुझे साफ-साफ दिखाई पड़ा कि वह उसांस जिस नाक से आयी है, उसमें न चमड़ा है, न मांस, केवल हाड़-ही-हाड़ है। आगे-पीछे, दायें-बायें अंधेरा है। आधी रात सांय-सांय कर रही है।

कानों के ऊपर से ठंडी उसाँसें लगातार आने लगीं। मैंने देखा कि मेरा दाहिना पैर थर-थर कांप रहा है। उसे रोकने की कोशिश की, परन्तु वह रुका नहीं। मानो वह मेरा पैर ही न हो।

ठीक उसी समय बहुत दूर से एक पुकार कानों में पहुँची—"बाबूजी ! बाबू साहब !" सारे शरीर में काँटे उठ आये। कौन पुकार रहा है ? फिर आवाज आयी—"कहीं गोली मत छोड़ दीजियेगा !"

इतने में तीन नौकर लालटेन लिए आ पहुँचे। मैं चुपचाप उनके साथ डेरे पर आया।

दूसरे दिन बैठक में पहुँचते ही सवाल पर सवाल होने लगे। कुमारजी बोले—"धन्य है तुम्हारा साहस, श्रीकान्त ! क्या देखा ?"

मैंने कहा—"देखा कुछ नहीं। हाँ, सुना।"

मैंने उन्हें सारी बातें कह सुनायीं।

परीक्षा

जब रियासत देवगढ़ के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढ़े हुए तो परमात्मा की याद आई। जाकर महाराज से विनय की कि दीनबन्धु ! दास ने श्रीमान् की सेवा चालीस साल तक की, अब कुछ दिन परमात्मा की सेवा करने की आज्ञा चाहता हूँ। दूसरे, अब मेरी अवस्था भी ढल गई, राज-काज संभालने की शक्ति नहीं रही। कहीं भूल-चूक हो जाय तो बुढ़ापे को दाग लगे, सारी जिन्दगी की नेकनामी मिट्टी में मिल जाय।

राजा साहब अपने अनुभवशील, नीति-कुशल दीवान का बड़ा आदर करते थे। बहुत समझाया लेकिन जब दीवान साहब ने न माना तो हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, पर शर्त यह लगा दी कि रियासत के लिए नया दीवान आप ही को खोजना पड़ेगा।

दूसरे दिन देश के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पत्रों में यह विज्ञापन निकला कि देवगढ़ के लिए एक सुयोग्य दीवान की जरूरत है। जो सज्जन अपने को इस पद के योग्य समझें वे वर्तमान दीवान सरदार सुजानसिंह की सेवा में उपस्थित हों। यह जरूरी नहीं है कि वे ग्रेजुएट हों, मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है। मन्दाग्नि के मरीजों को यहाँ तक कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं। एक महीने तक उम्मीदवारों के रहन-सहन, आचार-विचार की देखभाल की जायगी। विद्या का कम, परन्तु कर्तव्य का अधिक विचार किया जायगा। जो

महाशय इस परीक्षा में पूरे उतरेंगे वे इस उच्च पद पर सुशोभित होंगे।

इस विज्ञापन ने सारे देश में हलचल मचा दी। ऐसा ऊँचा पद और किसी प्रकार की कैद नहीं! केवल भाग्य का खेल है। सैकड़ों आदमी अपना-अपना भाग्य परखने के लिए चल खड़े हुए। देवगढ़ में नये-नये और तरह-तरह के मनुष्य दिखाई देने लगे। प्रत्येक रेलगाड़ी से उम्मीदवारों का एक मेला-सा उतरता। कोई पंजाब से चला आता था, कोई मद्रास से, कोई नये फैशन का प्रेमी, कोई पुरानी सादगी पर मिटा हुआ। पण्डितों और मौलवियों को भी अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करने का अवसर मिला। बेचारे सनद के नाम को रोया करते थे, यहाँ उसकी कोई जरूरत नहीं थी। रंगीन अमामे और चोगे और नाना प्रकार के अँगरखे और कन्टोप देवगढ़ में अपनी सज-धज दिखाने लगे। लेकिन सबसे विशेष संख्या ग्रेजुएटों की थी, क्योंकि सनद की कैद न होने पर भी सनद से पर्दा तो ढका रहता है।

सरदार सुजानसिंह ने इन महानुभावों के आदर-सत्कार का बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। लोग अपने-अपने कमरों में बैठे हुए महीने के दिन गिना करते थे। हर एक मनुष्य अपने जीवन को अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छे रूप में दिखाने की कोशिश करता था। मिस्टर "अ" नौ बजे तक सोया करते थे। आजकल वे बगीचे में टहलते हुए उषा का दर्शन करते थे। "ब" को हुक्का पीने की लत थी, पर आजकल बहुत रात गये किवाड़ बन्द करके अंधेरे में सिगार पीते थे। "स", "द" और "ज" से उनके घरों पर नौकरों का नाक में दम था, लेकिन वे सज्जन आजकल "आप" और "जनाब" के बगैर नौकरों से बात नहीं करते थे। महाशय "क" नास्तिक थे, मगर आजकल उनकी धर्म-निष्ठा देखकर मन्दिर के पुजारी

को पदच्युत हो जाने की शंका लगी रहती थी। मिस्टर "ल" को किताबों से घृणा थी, परन्तु आजकल वे बड़े-बड़े ग्रन्थ खोल कर पढ़ने में डूबे रहते थे। जिससे बात कीजिए, वह नम्रता और सदाचार का देवता बना मालूम होता था। शर्मा जी घड़ी रात ही से वेद-मन्त्र पढ़ने लगते थे और मौलवी साहब को तो नमाज के सिवा और कोई काम न था। लोग समझते थे कि एक महीने की झंझट किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।

लेकिन मनुष्यों का वह बूढ़ा जौहरी आड़ में बैठा हुआ देख रहा था कि इन बगुलों में हंस कहाँ छिपा हुआ है।

एक दिन नये फैशन वालों को सूझी कि आपस में "हॉकी" का खेल हो जाय। यह प्रस्ताव हॉकी के मँजे हुए खिलाड़ियों ने पेश किया। यह भी तो आखिर एक विद्या है। इसे क्यों छिपा रक्खें। सम्भव है, कुछ हाथों की सफाई ही काम कर जाय। चलिये, तय हो गया, फील्ड बन गया, खेल शुरू हो गया और गेंद ठोकरें खाने लगी।

रियासत देवगढ़ में यह खेल बिल्कुल निराली बात थी। पढ़े-लिखे भलेमानुष लोग शतरंज और ताश जैसे गम्भीर खेल खेलते थे। दौड़-कूद के खेल बच्चों के खेल समझे जाते थे।

खेल बड़े उत्साह से जारी था। धावे के लोग जब गेंद को लेकर तेजी से उड़ते तो ऐसा जान पड़ता था कि कोई लहर बढ़ती चली आती है। लेकिन दूसरी ओर के खिलाड़ी इस बढ़ती हुई लहर को इस प्रकार रोक लेते थे मानो लोहे की दीवार है।

सन्ध्या तक यही धूम-धाम रही। लोग पसीने में तर हो गये। खून की गर्मी आँख और चेहरे से झलक रही थी। हाँफते-हाँफते बेदम हो गये, लेकिन हार-जीत का निर्णय न हो सका।

अंधेरा हो गया था ! इस मैदान से जरा दूर हटकर एक नाला था। उस पर कोई पुल न था। पथिकों को नाले से होकर आना पड़ता था। खेल अभी बन्द ही हुआ था और खिलाड़ी लोग बैठे दम ले रहे थे कि एक किसान अनाज की भरी हुई गाड़ी लिए हुए उस नाले में आया। लेकिन कुछ तो नाले में कीचड़ थी और कुछ उसकी चढ़ाई इतनी ऊँची थी कि गाड़ी ऊपर न चढ़ सकती थी। वह कभी बैलों को ललकारता, कभी पहियों को हाथों से ढकेलता, लेकिन बोझ अधिक था और बैल कमजोर। गाड़ी कभी ऊपर न चढ़ती और चढ़ती भी तो कुछ दूर चढ़कर फिर खिसककर नीचे पहुँच जाती। किसान बार-बार जोर लगाता और बार-बार झुंझला कर बैलों को मारता, लेकिन गाड़ी उभरने का नाम न लेती थी। बेचारा इधर-उधर निराश होकर ताकता, मगर वहाँ कोई सहायक नजर न आता था। गाड़ी को अकेले छोड़कर कहीं जा भी न सकता था। बड़ी आपत्ति में फँसा हुआ था। इसी बीच में खिलाड़ी हाथों में डण्डे लिए झूमते-झूमते उधर से निकले। किसान ने उनकी तरफ सहमी हुई आँखों से देखा। परन्तु किसी से मदद माँगने का साहस न हुआ। खिलाड़ियों ने भी उसको देखा, मगर बन्द आँखों से, जिनमें सहानुभूति न थी। उसमें स्वार्थ था, मद था, मगर उदारता या वात्सल्य का नाम भी न था।

लेकिन उसी समूह में एक ऐसा मनुष्य भी था जिसके हृदय में दया थी और साहस था। आज हॉकी खेलते हुए उसके पैरों में चोट लग गई थी। लँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे चला आता था। अकस्मात् उसकी निगाह गाड़ी पर पड़ी। ठिठक गया। उसे किसान की सूरत देखते ही सब बात ज्ञात हो गई। डण्डा एक किनारे रख दिया, कोट उतार डाला, और किसान के पास जाकर बोला "मैं तुम्हारी गाड़ी निकाल दूँ ?"

किसान ने देखा कि एक गठे हुए बदन का लम्बा आदमी सामने खड़ा है। डर कर बोला, "हुजूर ! मैं आपसे कैसे कहूँ ?" युवक ने कहा, "मालूम होता है तुम यहाँ बड़ी देर से फँसे हुए हो। अच्छा, गाड़ी पर जाकर बैलों को साधो, मैं पहिये को ढकेलता हूँ। अभी गाड़ी ऊपर जाती है।"

किसान गाड़ी पर जा बैठा। युवक ने पहिये को जोर लगाकर उकसाया। कीचड़ बहुत ज्यादा थी। वह घुटने तक जमीन में गड़ गया, लेकिन हिम्मत न हारी। उसने फिर जोर

किया, उधर किसान ने बैलों को ललकारा। बैलों को सहारा मिला, हिम्मत बँध गई। उन्होंने गर्दन झुकाकर एक बार जो जोर किया तो गाड़ी नाले के ऊपर थी।

किसान युवक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बोला, "महाराज ! आपने आज मुझे उबार लिया नहीं तो सारी रात यहीं बैठना पड़ता।"

युवक ने हँस कर कहा, "अब मुझे कुछ इनाम देते हो ?"

किसान ने गम्भीर भाव से कहा, "नारायण चाहेंगे तो दीवानी आपको ही मिलेगी।"

युवक ने किसान की तरफ गौर से देखा। उसके मन में एक सन्देह हुआ, "क्या यही सुजानसिंह तो नहीं है? आवाज मिलती है। चेहरा-मोहरा भी वही है।" किसान ने भी उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। शायद उसके दिल के सन्देह को भाँप गया। मुस्कराकर बोला, "गहरे पानी में बैठने से मोती मिलता है।"

निदान महीना पूरा हुआ। चुनाव का दिन आ पहुँचा। उम्मीदवार लोग प्रातःकाल से ही अपने भाग्य का फैसला सुनने के लिए उत्सुक थे। दिन काटना पहाड़ हो गया, प्रत्येक के चेहरे पर आशा और निराशा के रंग आते थे। नहीं मालूम आज किसके नसीब जागें, न जाने किस पर लक्ष्मी की कृपा-दृष्टि होगी।

सन्ध्या समय राजा साहब का दरबार सजाया गया। शहर के रईस और धनाढ्य लोग, राज के कर्मचारी और दरबारी और दीवानी के उम्मीदवारों का समूह, सब रंग-बिरंग की सज-धज बनाये दरबार में आ विराजे। उम्मीदवारों के कलेजे धड़क रहे थे।

तब सरदार सुजानसिंह ने खड़े होकर कहा, "मेरी दीवानी के उम्मीदवार महाशयो! मैंने आप लोगों को जो कुछ कष्ट दिया हो उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। इस पद के लिए ऐसे पुरुष की आवश्यकता थी जिसके हृदय में दया हो और साथ-साथ आत्म-बल। हृदय वह जो उदार हो। आत्म-बल वह जो आपत्ति का वीरता के साथ सामना करे और इस रियासत के सौभाग्य से हमको ऐसा पुरुष मिल गया। ऐसे गुणवान् संसार में कम हैं और जो हैं वे कीर्ति और मान के

शिखर पर बैठे हुए हैं, उन तक हमारी पहुँच नहीं। मैं रियासत को पंडित जानकीनाथ की दीवानी पाने पर बधाई देता हूँ।"

रियासत के कर्मचारी और रईसों ने जानकीनाथ की तरफ देखा। उम्मीदवार दल की आँखें उधर उठीं मगर उन आँखों में सत्कार था और इन आँखों में ईर्ष्या।

सरदार साहब ने फिर फरमाया, "आप लोगों को यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होगी कि जो पुरुष स्वयं घायल होने पर भी एक गरीब किसान की भरी हुई गाड़ी को दलदल से निकालकर नाले के ऊपर चढ़ा दे उसके हृदय में साहस, आत्म-बल और उदारता का वास है। ऐसा आदमी गरीबों को कभी न सतावेगा। उसका संकल्प दृढ़ है जो उसके चित्त को स्थिर रक्खेगा। वह चाहे स्वयं धोखा खा जावे, परन्तु दया और धर्म से न हटेगा।"

"तो फिर जल्दी करो न माँ।"

"बहुत अच्छा बेटा। शाबाश, जरा अपने पिताजी को तो कह आओ कि वे भी जल्दी तैयार हो जाएँ।"

बाजार चलने से पहले माँ ने कहा—"आज साँझ घर में नए भगवान् की स्थापना होगी। आओ बेटा, बाजार जाने से पहले हम पुराने भगवान् की पूजा कर लें।"

राजीव जल्दी बाजार जाने को उत्सुक था। परन्तु नए भगवान् की बात ने उसके दिल में उत्सुकता उत्पन्न कर दी। वह बोला—"भगवान् भी नए और पुराने होते हैं माँ?"

माँ ने कहा—"नए और पुराने तो हम लोग होते हैं, बेटा। भगवान् तो सदा नया है और साथ-ही-साथ वह सदा पुराना भी है।"

कहते-कहते माँ समझ गई कि राजीव के लिए वह एक पहेली-सी दुरूह बात कह गई है। इससे जरा मुस्करा कर उसने कहा—"बेटा! भगवान् के बारे में सवाल नहीं किए जाते। उनकी तो पूजा ही की जाती है, चाहे वह किसी रूप में हों।"

राजीव के लिए यह सब दुरूह था। मगर माँ की बात मान कर उसने और कोई सवाल नहीं किया। पूजा के समय वह बड़े ध्यान से माँ की ओर देखता रहा। माँ किस तरह दीया जलाती है, किस तरह भगवान् पर फूल और अक्षत चढ़ाती है, किस तरह भगवान् के मस्तक पर रोली से टीका लगाती है और किस तरह घण्टी बजाती है। और पूजा के अंत में जब आरती गाई गयी, तो राजीव ने भी उसमें भरसक सह-योग दिया।

पूजा के बाद भगवान् के प्रसाद-स्वरूप बर्फी का एक टुकड़ा राजीव के मुँह में देते हुए माँ ने उससे पूछा—"दुनिया में तुम्हें सब से प्यारा कौन लगता है, बेटा?"

बर्फी खाते-खाते मुँह से कुछ भी न कह कर राजीव दोनों हाथ फैलाकर अपनी माँ से लिपट गया, जैसे वह कहना चाहता हो—यह भी कोई पूछने की बात है माँ ?

माँ ने कहा—"मेरा जीवन भी भगवान् की कृपा से ही है। सभी दुनिया भगवान् की कृपा से चल रही है। सब रिश्ते टूट जाते है, मगर भगवान् का रिश्ता नहीं टूटता।" भगवान् के सम्बन्ध में और भी न जाने कितनी ही बातें माँ ने कहीं, पर राजीव के लिए वे सब बातें जैसे बेकार थीं।

बाजार में एक हलवाई से मिठाई खरीद कर, राजीव का हाथ पकड़े हुए, उसकी माँ उसे खिलौनों की एक दुकान पर ले गई और उसके पिताजी उसकी बहन को साथ लेकर दीए और आतिशबाजियाँ खरीदने दूसरी दुकान पर चले गए। खिलौनों का यह पूरा बाजार देखकर राजीव का जी खुश हो गया। सबसे नीचे मिट्टी के रंगीन खिलौनों की कतारें थीं, उनके ऊपर लकड़ी के खिलौनों की। जरा ऊँचाई पर देशी और विलायती सैल्यूलाइड के खिलौने रक्खे थे, और सबसे ऊपर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ सजाकर रक्खी गई थीं।

इतने खिलौने एक साथ देखकर पहले तो बालक राजीव का दिमाग ही चकरा गया। उसके बाद माँ की राय से उसने मिट्टी और लकड़ी के कुछ खिलौने चुने। दुकानदार ने ये सब खिलौने एक टोकरी में संभाल कर रख दिए। तभी एकाएक बालक राजीव की निगाह सबसे ऊपर रक्खी देवी-देवताओं की मूर्तियों पर गई। वह एकाएक बोल उठा—"माँ ! माँ ! वह देखो भगवान्।"

माँ ने कहा— "हाँ बेटा, ये सब भगवान् की मूर्तियाँ हैं। हमें भी इनमें से कुछ मूर्तियाँ खरीदनी हैं। यही तो नये भगवान् हैं।"

दुकानदार मिट्टी की कुछ मूर्तियाँ राजीव की माँ को दिखा ही रहा था कि एक बड़ी कार उसकी दुकान के पास आ खड़ी हुई। इस कार में से भव्य वस्त्रों से सजी-सजाई एक महिला और उसकी कन्या नीचे उतरी। अब दुकानदार का पूरा ध्यान इन ग्राहकों की ओर आकृष्ट हो गया। बालक राजीव लक्ष्मी की एक मूर्ति हाथ में लिए-लिए अपने से कुछ ही बड़ी, पर रहन-सहन में एकदम भिन्न उस नवागता लड़की की ओर देख रहा था।

उस भद्र महिला ने जल्दी-जल्दी में कुछ खिलौने खरीदे जिन्हें उसका ड्राइवर संभाल-संभाल कर कार में रखता चला गया। इसी बीच दुकानदार ने एक डिब्बे में से लक्ष्मी की नकली संगमरमर की एक बड़ी और सुन्दर मूर्ति बाहर निकाली और भद्र महिला की ओर बढ़ा दी। मूर्ति सचमुच बहुत सुन्दर थी और दुकानदार के सभी ग्राहकों का ध्यान बर-बस उसी की ओर आकृष्ट हो गया। मूर्ति भारी भी जरूर रही होगी, क्योंकि उस भद्र महिला ने बहुत ही शीघ्र उसे दुकान के एक फट्टे की खाली जगह पर रख दिया।

बालक राजीव इस जगह के पास ही खड़ा था। लक्ष्मी की यह भव्य मूर्ति देखकर वह बड़े उल्लास के साथ चिल्ला उठा—"माँ, माँ, यह देखो ! कितने सुन्दर भगवान्।" और साथ ही साथ उसने वह भारी मूर्ति एकाएक उठा ली। पूरी शक्ति लगा कर राजीव ने इस मूर्ति को अपने अंक में भर लिया और कहा—"माँ ! हम तो यही भगवान् लेंगे।"

इससे पहले कि राजीव की माँ उससे कुछ भी कहे, स्वच्छ वस्त्रों वाली उस महिला ने झपट कर लक्ष्मी की वह मूर्ति बालक राजीव के हाथों से छीन ली, और क्रोध-भरे स्वर में कहा—"बदतमीज कहीं का।"

बेचारा राजीव सन्न रह गया। बदतमीज का मतलब तो वह नहीं समझा, पर वह इतना जरूर समझ गया कि न सिर्फ वह महिला और दुकानदार ही, बल्कि उससे जरा-सी बड़ी उम्र की वह लड़की भी उसे बड़ी घृणा और क्रोध के साथ देख रही है।

हतप्रभ-सा राजीव दो-चार क्षणों तक बड़ी आकुल दृष्टि से अपनी माँ की ओर देखता रहा। परन्तु जब उसने देखा कि उसकी माँ भी उसे किसी तरह की प्रतिरक्षा नहीं दे पाई, तो उसकी रुलाई फूट निकली। राजीव की माँ ने अपने बेटे को अंक से लगाकर उस महिला से इतना ही कहा—"त्योहार के दिन आप बच्चे से इस तरह न छीनकर मुझ से भी तो कह सकती थीं।"

इस पर उस महिला ने बड़ी अवज्ञा के साथ उत्तर दिया—"यह चिट देखती हो ? पचास रुपयों की यह मूर्ति है, पूरे पचास की। तुम्हारा लाल इसे तोड़ देता तो तुम भरतीं इसकी कीमत ?"

कुछ भी जवाब दिये बिना राजीव की माँ राजीव को साथ लेकर उस दुकान से हट गई। राजीव अब भी सहमा हुआ था, और धीरे-धीरे सिसकियाँ भर रहा था। माँ ने उसे पुचकारा और कहा—"इस तरह दिवाली के दिन नहीं रोते पगले ! भगवान् तो सभी जगह हैं। हम गरीबों के लिए संग-मरमर का भगवान् नहीं है। हमारे लिए तो मिट्टी का भग-वान् है ?"

राजीव का जी खुश करने के लिए उसकी माँ ने उसे और भी कितनी ही चीजें खरीद कर दीं। साथ ही उसने माता लक्ष्मी की एक पीतल की बहुत छोटी-सी मूर्ति भी राजीव को खरीद कर दी और कहा—"यह तेरे भगवान् हैं, मेरे लाल !"

राजीव खुश हो गया और वह छोटी-सी मूर्ति उसने अपनी छाती से लगा ली।

उसके बाद दिवाली का शेष दिन राजीव ने बहुत हँसी-खुशी से बिताया। प्रातःकाल के अपमान की बात जैसे वह पूरी तरह भूल गया। मौहल्ले के बच्चों के साथ वह दिन-भर खूब खेला-कूदा।

साँझ हुई तो माँ और बच्चों ने सारे घर को छोटे-छोटे दीपों की कतारों से आलोकित कर दिया। इस आलोक के बीच-बीच नए देवी-देवताओं की पूजा की गई और उसके बाद बच्चों को भरपेट मिठाई खिलाई गई। राजीव को मिठाई देते हुए माँ ने कहा—"मिठाई खाकर जल्दी से तैयार हो जाओ बेटा। अभी हम सब लोग शहर की दिवाली देखने चलेंगे।"

बालक राजीव खुशी में भर कर नाच उठा। दिवाली देखने का आकर्षण उसके लिए मिठाई खाने से भी बड़ा था। जल्दी-जल्दी मिठाई के कुछ टुकड़े खाकर शेष मिठाई उसने एक छोटे से डिब्बे में डाल ली और यह डिब्बा अपने हाथों में उठा लिया। बादाम और पिस्ते की बरफी उसे बहुत पसन्द थी। ये सब चीजें उसने राह में खाने के लिए अपने डिब्बे में डाल लीं।

सारा शहर खूब सजा हुआ था। बड़ी-बड़ी दुकानें बिजली के सैकड़ों-हजारों बल्बों से प्रकाशित हो रही थीं, और आस-पास के घरों की छतों पर मिट्टी के दीए चमक रहे थे। जगह-जगह पटाखे बज रहे थे और आतिशबाजियाँ चलाई जा रही थीं। प्रकाश और आह्लाद का यह त्यौहार देख कर बालक राजीव का जी खुश हो गया। शहर की बड़ी भीड़ में अपनी माँ का हाथ पकड़े हुए वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा।

सहसा उसकी निगाह तेज नीले प्रकाश से चमचमाते हुए

ऊँचे कलश पर पड़ी। उसकी माँ ने बताया कि यह लक्ष्मी-नारायण का मन्दिर है, जिसे आज दस हजार बल्बों से सजाया गया है। आसपास की सब इमारतों से ऊँचा यह मन्दिर अपने नीले आलोक में बहुत ही भव्य और आकर्षक प्रतीत हो रहा था। माँ ने कहा—"बेटा, यह भगवान् का मन्दिर है। मेरा हाथ पकड़ लो, तो इस भीड़ के साथ-साथ हम लोग भी भगवान् के दर्शन कर आएँ।"

राजीव ने कहा—"हम जरूर चलेंगे माँ।" और इसके साथ ही उसने मिठाई के डिब्बे से, अपने भीतर की जेब में पड़ी, माता लक्ष्मी की उस छोटी-सी मूर्ति को दबाकर अपनी छाती से लगा लिया, मानो उस मूर्ति की उपस्थिति की अनुभूति उसे बल दे रही हो। माँ का हाथ पकड़े-पकड़े नन्हे राजीव ने बड़े उल्लास के साथ कहा—"यह मिठाई हम भगवान् पर चढ़ा देंगे, माँ।"

माँ का हृदय आनन्द से भर आया। राजीव का मुँह चूम वह मन्दिर की ओर बढ़ चली। मन्दिर के सहन में फूल बिक रहे थे। देवता पर चढ़ाने के लिए राजीव की माँ ने कुछ फूल भी खरीद लिए।

मन्दिर में आज असाधारण भीड़ थी, पर प्रबन्ध भी बहुत अच्छा था। एक ओर से भीड़ मन्दिर के भीतर जा रही थी, और भगवान् के दर्शन कर दूसरी ओर से लोग करीने के साथ बाहर निकल रहे थे। सब ओर पूरी व्यवस्था थी। किसी तरह का धक्कम-धक्का या चीख-चिल्लाहट मन्दिर में नहीं थी।

धीरे-धीरे राजीव और उसकी माँ मन्दिर के विशाल भवन में प्रविष्ट हुए। वहाँ सभी कुछ चमक रहा था, सभी कुछ महक रहा था और जैसे सभी कुछ श्रद्धा के दिव्य संगीत से

मुखरित हो रहा था। दो-दो कतार में सभी लोग धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे।

एक क्षण आया, जब राजीव और उसकी माँ ने अपने को भगवान् की मूर्ति के सम्मुख पाया। श्रद्धा-विह्वल होकर राजीव की माँ ने मूर्ति के सम्मुख अपना सिर झुका दिया। बालक राजीव भगवान् पर चढ़ाने के लिए जल्दी-जल्दी डिब्बे में से बादाम और पिस्ते की बर्फी निकाल ही रहा था कि जैसे एकाएक वह मूर्ति को पहचान गया। मिठाई का डिब्बा तत्काल उसके हाथ से छूटकर नीचे गिर गया और

आतंकित-सा होकर वह चिल्ला उठा—"माँ, माँ, यह तो अमीरों का भगवान् है।"

माता लक्ष्मी की वह विशालकाय, संगमरमर की उज्ज्वल मूर्ति फूलों से सजी-सजाई अब भी उसी तरह निस्संज्ञ रूप में थी, और सहमा हुआ बालक राजीव अपने पीतल के छोटे-से भगवान् को अपनी छाती से चिपका रहा था।

(२८) बाघ से भिड़न्त

पच्चीस वर्ष के शिकारी जीवन में बाघ, शेर, सुअर, साँप और घड़ियाल से इतनी बार बाल-बाल बचा हूँ कि यह फैसला करना मुश्किल है कि कौन-सी घटना सबसे अधिक रोमांचकारी कही जाय। हर घटना के अलग-अलग पहलू हैं। पर आज बाघ से बचने की रोमांचकारी घटना पेश करता हूँ।

बाघ शब्द यों तो व्याघ्र से बना है, पर गढ़वाल में अंग्रेजी के लेपर्ड या पैन्थर को बाघ कहते हैं। देहरादून और तराई के इलाकों में उसे गुलदार या गुलबघा कहते हैं। मैदानी क्षेत्रों में उसे तेंदुआ या बघर्रा कहते हैं। लेपर्ड और पैन्थर में कोई भेद नहीं है, अनेक शिकारियों और अनेक लेखकों ने लेपर्ड तथा पैन्थर को अलग-अलग दो जानवर माना है। यह उनकी भूल है। भारत के बर्फानी इलाकों से लगाकर ठेठ दक्षिण तक, और पंजाब से आसाम तक बाघ पाया जाता है। बाघ के शरीर पर चकत्ते होते हैं, और इससे स्पष्ट है कि वह चट्टान और झाड़ी में रहने वाला जानवर है।

बर्फानी इलाके के बाघ को बर्फानी बाघ "स्नो लेपर्ड" कहते हैं। उसका रूआँ मुलायम और अपेक्षाकृत बड़ा होता है। काला बाघ भी होता है। उसकी कोई अलग किस्म नहीं है। बाघ का औसत वजन डेढ़ मन होता है। और लम्बाई नाक से लेकर पूँछ के सिरे तक साढ़े छः फुट। यों साढ़े सात फुट लम्बाई तक के बाघ होते हैं, और वजन में दो सवा दो

मन के। सबसे बड़ा बाघ जो मैंने मारा, आठ फुट दो इंच लम्बा था। वह भैंसों तक को मारा करता था। इतने लम्बे बाघ अपवादस्वरूप ही हैं।

सन् १९२४ की बात है। समय सायंकाल के साढ़े चार बजे। टिहरी गढ़वाल का इलाका। महीना दिसम्बर का। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था और चाय पीने में मजा आ रहा था कि किसी ने बाहर से पुकारा, "जरा बाहर आइए। एक आदमी आया है और बाघ की खबर लाया है।" बाघ का नाम सुनकर मैं उछल पड़ा। चाय का प्याला वहीं रख कर झट से बाहर आ गया।

बाहर आकर देखा कि पश्मीने की चादर ओढ़े मेरे शिकारी मित्र लक्ष्मीदत्त थपलियाल खड़े हैं और उनकी बगल में एक हाड़ का कंकाल बूढ़ा खड़ा है। उसकी मुखाकृति उसकी अन्तर्वेदना की द्योतक थी। कष्ट, विपत्ति और समय के उलट-फेर ने उसकी गति तूफान में फँसे जहाज की सी कर दी थी।

एक तो दिन भर की थकावट, दूसरे कुसमय और उस पर कड़ाके का जाड़ा। तबियत बाहर निकलने को न करती थी। पर उस बूढ़े की आँखों में एक खिचाव था जो हृदतंत्री के तारों को अपनी ओर खींचता था। वह खिचाव प्रेम का आकर्षण सा न था, वरन् कंपायमान, भावी आशंका से भयभीत बलिपशु की आँखों से निकलती हुई मूक याचना-सा खिचाव था।

वन-बीहड़-सहचरी बन्दूक उठाई। कारतूस जेब में डाले और लक्ष्मीदत्त जी तथा किसान के साथ चल पड़ा। पहाड़ी पर कुछ ही आगे गए होंगे कि बूढ़े ने कंधे पर हाथ रख कर कहा, "मालिक! ऊपर देखो, ठीक उस डांडे पर मेरी गाय मरी पड़ी है और वहाँ से चार फर्लांग पर पहाड़ के दूसरी ओर

दूसरी गाय मरी पड़ी है। बूढ़े की बात सुनकर बाघ मारने की योजना बनाई। लक्ष्मीदत्त जी और मुझ में चार-पाँच मिनट तक परामर्श हुआ। परामर्श क्या था, एक प्रकार की युद्ध-कान्फ्रेन्स थी जिसमें अपने शत्रु की सब चालों का ख्याल किया गया।

परामर्श से हम लोग इस नतीजे पर न पहुँचे कि एक ही बाघ ने दो गायों को मारा होगा। दो बाघों की आशंका से हम लोगों ने अपने दल को दो भागों में विभक्त किया। लक्ष्मीदत्त जी दूसरी गाय की लाश की ओर चले। मैं डांडे की ओर चला और यह निश्चय हुआ कि समय अधिक हो जाने पर लाश पर आज बैठना ठीक नहीं, क्योंकि बैठने के लिए स्थान दिन में चार बजे तक बन जाना चाहिए, जिससे बाघ को किसी बात का शक न हो।

स्मरण रहे, बाघ जंगल का कूटनीतिज्ञ चाणक्य होता है। छोटी-सी हिलती पत्ती से और कोई-कोई तो कहते हैं कि पलक की आवाज से बाघ अपने शत्रु को पहचान लेता है, और फिर लाश पर नहीं आता। इसलिए बाघ को मारने के लिए झाड़ी और काँटों का जो स्थान बनाते हैं वह दिन में चार बजे तक बना लेते हैं। बनाते समय कुछ आदमी इधर-उधर बैठे रहते हैं जिससे बाघ यह समझे कि किसान घास काट रहे हैं। जब शिकारी छिप कर बैठ जाते हैं तब और लोग बातें करते चले जाते हैं जिससे बाघ समझे कि घास काटने वाले चले गए और उसका भोजन बेखटके पड़ा है। ऐसा होने पर भी बाघ एकदम लाश पर नहीं आता। छिप-छिप कर, रुक-रुक कर और देख-देख कर वह एक-एक गज बढ़ता है।

लक्ष्मीदत्त जी बूढ़े के साथ छोटी गाय की लाश की ओर चले। हम दोनों को गाँव में मिलना था।

मुझे एक मील के लगभग पहाड़ की चोटी पर पहुँचना था और समय तंग हो रहा था। जंगल में बाघ अपने शिकार पर चार-पाँच बजे ही आ जाता है इसलिए मैं बड़ा चौकन्ना होकर चल रहा था। पहाड़ की चोटी पर डूबते हुए सूरज की लाल किरणें गजब ढा रही थीं। रात्रि-आगमन के चिन्ह चारों ओर दृष्टिगोचर हो रहे थे। चिड़ियाँ झाड़ियों में चहचहा रही थीं, किसान थके-माँदे घर लौट रहे थे। मैं चढ़ाई पर एक-एक पैर संभाल कर रख रहा था कि कहीं चुपचाप बाघ दिखाई पड़ जाय और बाघ मुझे न देख पावे तो फिर एक बार जीवन की बाजी लगाकर फायर कर दिया जाय। आधी चढ़ाई के उपरान्त मैं एक चट्टान के किनारे रुका और गिद्ध-दृष्टि से पहाड़ की चोटी की ओर देखा। एक झाड़ी के आस-पास चिड़ियाँ कुछ विचित्र रूप से चहचहा रही थीं। उधर जो देखा तो हृदय की धड़कन एकदम बढ़ गई। सामने तीन सौ गज पर झाड़ी के सहारे बाघ खड़ा हुआ दिग्दर्शन कर रहा था और चिड़ियाँ अपनी शक्ति भर उस विरोध का प्रदर्शन कर रही थीं। मेरे पास राइफल न थी, बन्दूक थी। राइफल न लाने की मूर्खता पर अपने को हजार बार कोसा क्योंकि १२ नम्बर यानी ट्वैल्व बोर बन्दूक की मार इतनी दूर नहीं होती।

बाघ थोड़ी देर बाद अपने शिकार की ओर शाही शान से चला। मैंने अपना मार्ग छोड़कर कुछ चक्कर काट कर पहाड़ की चोटी पर पहुँचने की ठानी जिससे बाघ पर बगल से छिप कर फायर किया जा सके। बाघ मुझ से तीन सौ गज ऊपर था। वह पहाड़ के ऊपर से ही अपने शिकार की ओर जा रहा था। मैंने आगे बढ़ कर उसके रास्ते में जाना चाहा।

दोनों को एक ही स्थान पर पहुँचना था। जिस प्रकार दो गलियों से कोई चल कर गलियों के मोड़ पर मिलते हैं और जब तक आमने-सामने नहीं आ जाते तब तक एक दूसरे को

नहीं देख सकते, ठीक उसी प्रकार मैं इस विचार से मोड़ की ओर चला कि कहीं पीछे से पचास-साठ गज की दूरी पर बाघ दिखाई पड़ा और मौका हुआ तो उसे मारने की चेष्टा करूंगा। यह केवल अन्दाज ही अन्दाज था। यह स्वप्न में भी विचार न था कि अन्दाज इतना ठीक निकलेगा। जूते उतार कर मैं ऊपर की ओर लपका। जूते इसलिए उतार दिये कि तनिक भी आहट न हो। जब पहाड़ की चोटी का मोड़ पचास-साठ गज रह गया, मैं धीरे-धीरे एक-एक पैर गिन कर बन्दूक को बगल में दबाए और हाथ बन्दूक के घोड़े पर रक्खे आगे बढ़ा। पर ज्यों ही मैं मोड़ पर पहुँचा त्यों ही दूसरी ओर से बाघ आ गया। जंगल में स्वच्छन्द रूप से अभिमान के साथ मस्त चाल से चलते हुए बाघ को इतने समीप से मैंने कभी न देखा था। झुकी हुई अधखुली आँखें, श्वेत दाँतों से कुछ बाहर निकली हुई लाल जीभ—साक्षात् यमराज की मूर्ति मेरे सामने आ गई। हृदय की धड़कन कुछ सेकिण्ड के लिए न मालूम कितनी तीव्र हो गई। बाघ से मुझे सहसा भय नहीं लगता, पर इस आकस्मिक भिड़न्त के लिए मैं तैयार न था। पीछे हटने का समय न था। ऐसे अवसरों पर मनुष्य की सहायक पशु-बुद्धि ही होती है, और प्रेरक कोई विशेष शक्ति। ज्यों ही बाघ की दृष्टि मुझ पर पड़ी त्यों ही वह गरज कर पिछले पाँव पर खड़ा हो गया। वह मेरे इतने समीप था कि मैं बन्दूक की नाल से उसे छू सकता था। पहले तो मैं काँपा और यह मालूम होता था कि हृदय नीचे पैरों की ओर भीतर ही भीतर सरक रहा हो। बाद को निराशाजन्य साहस अथवा उद्वेग ने मुझे मृत्यु का सामना करने योग्य बना दिया। मैंने समझ लिया कि मैं फायर करूँ या न करूँ, बाघ मुझे मार ही देगा।

उधर बाघ ने भी समझा कि यह दो पैर का प्राणी काली-

काली लोहे की वस्तु लिए उसकी जान की खातिर आया है, उसके खून का प्यासा है। उसके मुँह से ग्रास छीने तो छीने, पर उसकी जान का ग्राहक दो पैरों का यह जीव इस प्रकार अपमान करके उसे मारने आया है। यह नहीं हो सकता। इस अपमान और धृष्टता का एक ही उत्तर था और वह यह कि वह अपने शत्रु की हस्ती को ही मिटा दे।

इधर मैंने ख्याल किया कि बाघ गिरते हुए भी एक चोट करेगा और यदि वह मेरे खून को न भी पी सकेगा तो नीचे खड्ड में तो गिरा ही देगा। खड्ड में एक मील नीचे गिरने पर मेरे अन्त का पता भी कोई न देगा। यद्यपि मैं बन्दूक का घोड़ा चढ़ाए खड़ा था, मैंने निश्चय कर लिया था कि पहले मैं आक्रमण नहीं करूँगा। यदि बाघ मुझ पर झपटा तो फायर करूँगा और आत्म-रक्षा के लिए जो कुछ बन पड़ेगा, करूँगा।

एक मिनट तक हम दोनों डटे रहे। बाघ गुर्रा रहा था।

उसकी आँखों से ज्वाला-सी निकल रही थी। मैंने न फायर किया और न उसने आक्रमण। वह एक मिनट युग के समान था। ज्यों ही वह मुड़ा मैंने समझा कि वह मेरे ऊपर आया। बन्दूक दाग ही तो दी। जंगल गूँज गया। गोली बाघ के पेट में लगी। मैंने बाघ को गिरते देखा। बन्दूक छोड़ मैं नीचे को दौड़ा पर गिर कर लुढ़कने लगा। जिस बात का डर था, वही हुआ। खड्ड की ओर मैं फुटबाल की भाँति लुढ़कने लगा। चालीस-पचास गज लुढ़का हूँगा कि हृदय दहलाने वाली बाघ की गर्जन कान पर मालूम हुई।

मौत के अनेक बहाने होते हैं और जीवन-रक्षा के अनेक सहारे। यदि जीवन होता है तो मनुष्य पहाड़ की चोटी से गिर के बच जाता है और मरने के लिए तो सीढ़ियों से गिरना ही काफी है। मुझे बचना था। सामने खड्ड की ओर तेजी के साथ लुढ़कने के मार्ग में एक चीड़ का वृक्ष था। इतना होश-हवास तो था ही। आठ-दस गज ऊपर से पेड़ देख लिया। उसी ओर जाने के लिए हाथ-पैर पीटे और उसी पेड़ से जा टकराया। पीछे से बाघ के घसीटने की सरसराहट आ रही थी। पेड़ से ठोकर खा कर रुका, झटपट ऊपर चढ़ा। इतने ही में विद्युत गति से बाघ भी आ गया और उचक कर मुझ पर पंजा मारा। उसके पंजे में मेरा नेकर आ गया। नेकर फट गया, पर मैं ऊपर निकल गया।

बाघ की कमर टूट गई थी। इसीलिए वह पेड़ पर न चढ़ सका। पेड़ पर ऊपर बैठ कर मैंने दम लिया। नीचे बाघ अन्तिम साँसें ले रहा था। एक झटके से बाघ का दम निकल गया।

रात के नौ बजे लालटेन लेकर कुछ पहाड़ी उस रास्ते से होकर निकले। पेड़ से मैंने आवाज दी और बड़ी कठिनाई से

मैं पेड़ से उतर कर हाथ-पैरों के बल रास्ते पर पहुँचा। बाघ की लाश उठाने का काम सुबह पर छोड़ा गया और बन्दूक की तलाश भी प्रातःकाल पर।

इतने दिनों बाद भी बाघ से उस दिन बाल-बाल बचने की घटना ताजी है।

बच्चों ने शेर मारा

सन् १९१४ की बात है, हम छोटे ही थे और सातवें दर्जे में पढ़ते थे। गुरुकुल कांगड़ी तब गंगाजी के उस पार एक टापू में था जहां आस-पास घना जंगल था। रात को एक शेर गोशाला की टंकी में पानी पीने आता था। अक्सर बछड़ा-बछिया तोड़ जाता। महात्मा मुंशीरामजी ने, जो दो बरस बाद भारत के प्रसिद्ध नेता स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी कहलाये, अपने अर्दली ठाकुर से कहा—"इस शेर का बन्दोबस्त करो, वरना सब गायें खा डालेगा। बन्दूक लिये रात में पहरा देते हो, फिर भी इसे नहीं ठीक कर पाते।"

ठाकुर को बात लग गयी और उसी रात, टंकी पर पानी पीते वक्त, शेर पर उसने गोली दाग दी। भयानक दहाड़ के साथ शेर उछला और जंगल की तरफ भागा। उसके पुट्ठे में गोली लगी थी और वह लंगड़ा हो गया था। घायल शेर से होशियार रहने के लिए हम सब से कह दिया गया। इस-लिए उस दिन हम सब लड़के हाकियां, लाठियां या भाले लेकर ही बाहर निकले।

शाम का खेल बन्द होने की घंटी बजते ही हम छोटे लड़के हाकियां लिए बाग की सड़क पर दौड़ते चले आ रहे थे। बगीचे के पेड़ों तले अंधेरा काफी गहरा हो चला था। फिर भी दूर डूबते सूर्य की लाली के कारण धुंधलके में कुछ शक्लें दिखाई पड़ती थीं जो साफ न थीं। सबसे आगे दौड़ते

हुए धर्मचन्द ने आवाज लगायी—"अरे महेन्द्रभाई, संध्या का समय हो गया, कुत्ते से क्यों खेल रहे हो !" और हम सब ने महाविद्यालय के बड़े छात्र महेन्द्र को एक बड़े से जानवर के आगे के दोनों पैर अपने दोनों हाथों में पकड़े खड़े देखा। दोनों एक दूसरे से कुश्ती-सी लड़ रहे थे।

तब तक हम उनके काफी पास पहुँच चुके थे। महेन्द्र ने जबाव दिया—"अजी देखो, कुत्ता है या शेर !" और हमने सचमुच देखा, बड़े इत्मीनान के साथ वे शेर से भिड़े हुए थे। शेर के पंजे पकड़े वे उसे झकझोर रहे थे और उनके कपड़े फटे, शरीर लहू-लुहान था।

शेर का मुँह खुला हुआ था। उसकी बड़ी-बड़ी पीली दाढ़ें और सफेद पैनी खीसें शाम के अंधेरे में भी साफ दिखाई पड़ रही थीं। गुस्से से वह गुर्रा रहा था। आँखें फटी-सी पड़ रही थीं और उसकी बड़ी-बड़ी मूँछें महेन्द्रभाई के गोरे लाल गालों को छू-छूकर, उनके धक्के के कारण, फिर पीछे हट जाती थीं। शेर के जबड़े बन्द नहीं हो पाते थे, क्योंकि उनके गले में महेन्द्रभाई का लोटा फँसा हुआ था। इसीलिए वह उन्हें भंभोड़ नहीं पा रहा था और बेबस क्रोध में बिफरता केवल गों-गों की गुर्राहट भर कर पा रहा था।

बात यों हुई कि रात को घायल होकर शेर ज्यादा दूर न गया था। गुरुकुल के उद्यान के उस हिस्से में, जहाँ अंगूर की घनी बेलें रौंस को दोनों तरफ से घेरे हुए दूर तक चली गयी थीं और दिन में भी जहाँ काफी अंधेरा रहता था, वह शेर आकर छिप गया था। बाग के कुएँ से वहाँ कई नालियों के जरिये ठंडा गंगाजल भी पहुँचता था, इसलिए शेर चाचा दिन भर वहीं पड़े रहे। शाम को जंगल में खिसक जाने के लिए वे बाहर निकले थे कि सामने ही महेन्द्रभाई पड़ गये। शौच होने के बाद, मन ही मन वागीश्वर विद्यालंकार की

मुन्दर कविता गाते हुए, लोटे में हाथ डाले, उसे घुमाते-नचाते वे चले आ रहे थे कि अचानक शेर उनके सामने आ निकला। वैसे तो वह निकलता चला जाता, पर महेन्द्रभाई उसकी नाक के सामने ही जा पहुँचे थे, तब मुँह फाड़कर उनका शिकार करने के सिवा और उसे चारा ही क्या था। दो पाँव से खड़ा होकर शेर महेन्द्रभाई की गर्दन दबोचने के लिए ज्यों ही खड़ा हुआ, वह उससे भिड़ गये। उसके खुले भयानक जबड़ों को, जो क्षण-क्षण पर उनकी गर्दन की ओर बढ़ रहे थे, उन्होंने देखा और निडर होकर एक हाथ से उसके बड़े पंजे को, जो उनके कंधे का मांस उधेड़े ले रहा था, उन्होंने पकड़ लिया और दूसरे हाथ का लोटा जोर से शेर के खुले मुँह में घुसेड़

दिया। बड़ा लोटा शेर के गले में अटक गया और अब वह न तो मुँह बन्द कर पाता था और न दहाड़ ही पाता था।

उसका दम घुट रहा था। तब लोटे में से हाथ निकालकर महेन्द्रभाई ने उसका दूसरा पंजा भी पकड़ लिया और उससे भिड़ गये। शेर का पिछला पुट्ठा घायल था ही, इसलिए वह एक पाँव से ही खड़ा हो पाता था। जोर का धक्का खाकर वह लड़खड़ा रहा था कि फिर महेन्द्रभाई ने पूरी ताकत से उसे धकेला और वह पीठ के बल नीचे गिर पड़ा।

तब तक हमारी पूरी हाकी टीम वहाँ पहुँच गयी और फिर तड़ातड़ हाकियों की मार ने शेर की खोपड़ी चकनाचूर कर दी, उसकी रीढ़ की हड्डी का कचूमर बना दिया गया और वह वहीं ढेर हो गया। बच्चों की हाकियों से मारा जाने वाला शायद हिन्दुस्तान का वह ही पहला शेर था। इसीलिए स्वामी श्रद्धानन्दजी ने उसे मढ़वा कर गुरुकुल के अजायबघर में रखवा दिया था।

महेन्द्रभाई काफी घायल हो चुके थे। डाक्टर ने ग्राफटिंग के लिए आदमी का गोश्त और खाल माँगी। सवाल था, कौन अपना मांस और खाल देकर महेन्द्रभाई की मदद करे? स्वामीजी के छोटे पुत्र और प्रसिद्ध आर्य-नेता इन्द्र विद्या-वाचस्पतिजी ने जो उन दिनों वहाँ पढ़ते थे, अपनी बाँह का गोश्त और खाल डा० सुखदेवजी को खुशी से काट लेने को कहा। और इस तरह महेन्द्रभाई का शरीर फिर स्वस्थ हो सका।

कर्त्तव्य

छुट्टी का दिन था। बालकों की एक टोली घूमने निकली। उसमें सब विद्यार्थी थे, लगभग एक उम्र के। छुट्टी के दिन वे लोग प्रायः इकट्ठे हो जाते थे और कभी हाकी तो कभी फुट-बाल अथवा क्रिकेट के बल्ले आदि लेकर मैदान में निकल जाते थे। टोली में एक बालक था रोहित। वह सातवीं कक्षा का छात्र था, बड़ा सुशील और भला। मुहल्ले भर में उसका मान था। खेलती-कूदती, गप-शप करती टोली मैदान में पहुँची। पहुँची कि फुटबाल शुरू हो गयी। सब बालक बिखरकर थोड़े-थोड़े फासले पर खड़े हो गये और लगे फुटबाल को उछालने। कोई-कोई तो इतने जोर से पैर मारता कि गेंद बहुत ऊँची आसमान में चली जाती और फिर सब में होड़-सी लगती कि देखें, कौन उसे अपने हाथों में लेता है। कभी-कभी तो इस क्रिया में उनके सिर भिड़ जाते, कभी कोई गिर जाता और जब-जब ऐसा होता, सारी टोली खिलखिला पड़ती।

और बहुत से लोग—स्त्री-पुरुष-बच्चे वहाँ घूम-फिर रहे थे; लेकिन इस टोली के बालकों का उस ओर ध्यान नहीं था। कोई भी आओ, कोई भी जाओ, वे अपने खेल में मग्न थे।

इस प्रकार खेल चलता रहा। एक बार गेंद जब हवा में घूमकर नीचे आई, तब रोहित ने लपकने का प्रयत्न किया, इतने में उसे सुधीर का धक्का लगा और गेंद उसकी अंगुलियों से छूकर नीचे गिर पड़ी। गिरी और एक बड़ा-सा गड्ढा खाकर

आगे लुढ़क चली। रोहित उसके पीछे दौड़ा। दौड़ते-दौड़ते वह कुछ कदम आगे निकल गया। गेंद के लुढ़कने का वेग कम हुआ और वह उसे पकड़ने को बढ़ा कि देखता क्या है, वहाँ एक बटुआ पड़ा है। बटुआ! उसका सारा शरीर एक साथ काँप गया। वह क्षण भर वहीं स्तब्ध खड़ा रहा। बटुआ है,

शायद इसमें रुपये भी हों। बहुत रुपये भी हो सकते हैं, थोड़े भी हो सकते हैं। यह भी हो सकता है कि थोड़ी-सी रेजगारी ही उसमें डालकर कोई घूमने निकल पड़ा हो।...पर वह बटुआ तो है...और उसका नहीं है...उसमें बड़ी रकम हुई तो!—बहुत-सी बातें उस एक क्षण में रोहित के मस्तिष्क में चक्कर काट गयीं। उसने इधर-उधर देखा, कोई भी तो उसे नहीं खोज रहा था। उसने बटुआ उठा लिया। हाथ में आने पर पता

चला कि वह भारी है, पर खोलने का साहस न हुआ। फिर उसने गेंद उठाई और टोली में आ मिला। सब बालक उसकी राह देख रहे थे। एक हाथ में गेंद और दूसरे में बटुआ देखकर वे सब लोग दौड़कर इकट्ठे हो गये। रोहित ने कहा—'यह बटुआ वहाँ पड़ा था।'

टीमो ने पूछा—'उसमें क्या है ?'

रोहित ने उत्तर दिया—'मुझे क्या पता ? रुपये होंगे, भारी मालूम देता है।'

सुधीर बोला—'आज किसी अच्छे का मुँह देखकर उठा होगा, रोहित।'

देवेन्द्र ने कहा—'वाह जी ! चलो रसगुल्ले खायेंगे।'

प्रद्युम्न जरा पीछे था। देवेन्द्र को थोड़ा ढकेलकर आगे बढ़ आया और बोला—'जरा इनकी लाटसाहबी तो देखो। रसगुल्ले खायेंगे। जा, जा, पहले वहाँ तलैया में मुँह धो आ। हम लोग तो बाइस्कोप देखेंगे। क्यों रे मोहन ! बोलता क्यों नहीं ?'

मोहन बेचारा चुपचाप खड़ा उन लोगों की बातें सुन रहा था। बोला—'अरे ! पहले यह तो देखो कि उसमें कितने रुपये हैं ! तब कोई प्रोग्राम बनाना।'

बात सब को पसन्द आई और रोहित ने बटुआ खोलकर उसमें से रुपये और रेजगारी निकालकर गिनी तो सब-के-सब भौचक्के रह गये। एक सौ बाईस रुपये दो आने !

रोहित गम्भीर हो गया, मानो अभी रो पड़ेगा। एक ही विचार रह-रहकर उसके मन में उठ रहा था—'जिसका बटुआ खोया है, उस बेचारे पर क्या बीत रही होगी। जब से उसे मालूम हुआ होगा, बेहद परेशान रहा होगा।'

बड़ी रकम देखकर लड़कों की माँग भी बढ़ गई। रस-गुल्ले, चाट, बाइस्कोप और न जाने किस-किस का प्रोग्राम बन गया। रुपये क्या मिले, मानो उन्हें दुनिया-भर का राज्य ही मिल गया।

रोहित की गम्भीरता प्रति क्षण बढ़ती जाती थी। उसके कंधे पर हाथ मार कर सुधीर ने कहा, 'क्या सोच रहा है? हमें खिलायेगा-पिलायेगा नहीं तो क्या इस रुपये से हाथी-घोड़े खरीदेगा?'

रोहित को छोड़कर सारी पार्टी हँस पड़ी।

रोहित ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा, 'तुम लोग हँस रहे हो, पर बटुए वाले का क्या हाल होगा?'

'हाल क्या होगा!' टीमो बोल उठा। 'जिसे रुपये रखने का ढंग नहीं, उसे खोने की क्या चिन्ता होगी!'

प्रद्युम्न बोला, 'चलो, अब देर हो रही है।' रसगुल्ले की बात याद करके उसके मुँह में बार-बार पानी आ रहा था।

रोहित सोचने लगा कि इतने बड़े शहर में वह उस बटुए वाले को कहाँ खोजेगा, और कैसे? तब अचानक उसके अंतर से जैसे कोई बोल उठा—'तू परेशान क्यों होता है। जिसका बटुआ है, वह खोजते-खोजते यहाँ अवश्य आयेगा। एक सौ बाईस रुपये दो आने! रकम थोड़ी नहीं है।'

और तब रोहित ने निश्चय किया कि बटुआ लिये वह यहीं बैठा रहेगा।

अपना निश्चय साथियों को बताया तो वे लोग हँस पड़े। सुधीर ने कहा—'बहुत अच्छा धर्मराजजी! जो आपके जी में आए, कीजिये। हम लोग तो जाते हैं।'

टीमों ने कहा, 'क्यों नीयत बिगड़ गई ? सारा रुपया बच्चू अकेले ही हड़प लेना चाहते हैं !'

उन बालकों ने और बहुत-सी बातें कहीं, पर वे जानते थे कि रोहित अपनी धुन का पक्का है। एक बार जो ठान ली, उस पर डटा रहता है।

सब ने मिलकर थोड़ी देर बटुए वाले की प्रतीक्षा की। अनन्तर रोहित को वहीं बैठा छोड़कर सब लोग चले गये।

रोहित अकेला रह गया तो तरह-तरह की बातें उसके मन में उठने लगीं। मान लो कि बटुए वाला इधर नहीं आया तो !···अन्दर से किसी ने कहा—हाँ, बता, नहीं आया तो ! 'रोहित' ने सिर झटका—नहीं, जब तक रात नहीं हो जायगी, वह यहीं डटा रहेगा, टस-से-मस न होगा। तब तक कोई न आया तो सोचेगा कि आगे क्या करे।···अरे पुलिस को उसे क्यों नहीं दे देते ?···उससे क्या होगा ? क्या भरोसा कि पुलिस खोजकर उसे उसके स्वामी के पास पहुँचा ही देगी ?—

बहुत कुछ सोच-विचार के बाद रोहित ने तय किया कि रात तक अगर कोई लेने न आया तो वह बटुए को अपने घर ले जायगा, माँ के सुपुर्द कर देगा और पिताजी से कहकर उसकी सूचना अखबार में निकलवा देगा। इससे अधिक वह और कर भी क्या सकता था !

नहीं जी ! उसकी नौबत नहीं आयेगी। बटुए वाला ढूंढता हुआ वहाँ अवश्य आयेगा, अवश्य आयेगा।

रोहित और दृढ़ता के साथ बैठ गया। लोग आते और घूमते हुए आगे बढ़ जाते। रोहित प्रत्येक की चाल को, उसके चेहरे को ध्यान से देखता और जब उसके मुँह पर परेशानी न दिखायी देती, तब वह अपनी सहज-बुद्धि से समझ जाता कि यह वह नहीं है, जिसकी प्रतीक्षा में वह बैठा है।

आधा घंटा बीता, एक बीता, दो बीते ! बालक का जी अब ऊबने लगा । वह क्या करे ? बटुए को वहीं पटककर क्या वह घर चला जाय ? नहीं जी ! ऐसा वह कैसे कर सकता है ?

थोड़ी देर और बीती कि इतने में देखता क्या है कि एक लड़की घबराई-सी इधर-उधर धरती पर कुछ खोजती उधर चली आ रही है। उसके चेहरे का रंग फीका पड़ रहा था और वह बेहद परेशान दीखती थी। रोहित ने तत्काल अनुमान कर लिया कि हो न हो, वह बटुआ इसी का है। वह चुपचाप अपने स्थान से उठा और आगे बढ़कर उसने पूछा, 'क्या खोज रही हो, बहिन जी ?'

लड़की ने निगाह उठाकर रोहित की ओर देखा, पर एक साथ उसके मुँह से शब्द नहीं निकला। वह शायद रास्ते भर रोती आयी थी। कुछ संभलकर बोली—'यहाँ कहीं मेरा बटुआ गिर गया है।'

'कैसा था ?' रोहित ने सहज स्वर में पूछा।

लड़की ने हाथ से इशारा करके बता दिया।

'उसमें कितने रुपये थे ?'

लड़की के होठ सूख रहे थे। उन पर जीभ फिराकर उसने कहा, 'बहुत थे। जो कुछ था सब उसी में था। मुझे कालेज की फीस देनी थी, कुछ किताबें लेनी थीं।'

'फिर भी कितने रुपये थे ?'

'सौ से ऊपर।'

'अब क्या करोगी ?'

इस प्रश्न पर लड़की के संयम का बाँध टूट गया। आँखें डबाडबा आयीं। रूमाल से उन्हें पोंछते हुए बोली, 'क्या बताऊं ! मेरा भाग्य बड़ा खोटा है !'

रोहित को पक्का विश्वास हो गया कि बटुआ उसी का है। उसने जेब से बटुआ निकालकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, 'देखिये, कहीं यह तो नहीं है।'

बटुआ देखते ही लड़की की आँखें चमक उठीं, शरीर में एक सिहरन दौड़ गई। बोली, 'भैया! तुमने मुझे बचा लिया। मैं तुम्हारा उपकार कभी न भूलूंगी।'

लड़की के हर्ष का पार न था, और रोहित? उसकी कुछ न पूछिए। उसका हृदय आनन्द से बल्लियों उछल रहा था। बटुआ लड़की के हाथ में देते हुए बोला, 'बहिन जी! गिन लीजिये, रुपये ठीक हैं न?'

लड़की झेंप गई। बोली, 'तुम कैसी बात करते हो !'

पर जब रोहित का बहुत आग्रह हुआ, तब वह गिनने को बाध्य हो गई। पूरे-के-पूरे रुपये निकले। उनमें से दस-दस के दो नोट रोहित की ओर बढ़ाते हुए बोली, 'यह लो भैया, अपना इनाम !'

रोहित का चेहरा तमतमा आया। बोला, 'इनाम ? कैसा इनाम ?'

'कितना बड़ा काम तुमने किया है, और कोई होता तो हाथ पड़ा बटुआ लौटाता ?'

रोहित ने कहा, 'बहिन जी ! यह बड़ा काम नहीं है। कर्त्तव्य है।'

लड़की ने आगे बढ़ कर बड़े प्यार से रोहित की पीठ थपथपायी और कृतज्ञता भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

रोहित ने कहा, 'बहिनजी ! आप मुझे कुछ देना ही चाहती हैं तो यह वचन दीजिये कि आगे आप इतनी असावधान न रहेंगी।'

लड़की ने एक बार उस असाधारण बालक की पीठ फिर थपथपायी और कुछ दूर रोहित के साथ चलकर दूसरे रास्ते पर मुड़ गई।

अब रोहित को देखो। ऐसा उछलता-कूदता घर की ओर चला मानो राम लंका जीतकर अयोध्या जा रहे हों। उसके पैर सड़क पर नहीं पड़ रहे थे, जैसे हवा में उड़ रहे हों। वह भूल गया कि इतनी देर से घर पहुँचने पर माँ नाराज होंगी और पिताजी हुए तो उसकी खबर लिए बिना नहीं मानेंगे।

घर आया तो सचमुच बहुत देर हो गई थी। माँ कई बार द्वार पर झाँक गयी थीं। छुट्टी के दिन रोहित कभी इतना

बाहर नहीं रहता था। राह देखते-देखते झुंझला उठीं। इतने में रोहित ने घर में प्रवेश किया। माँ ने कड़ाई के साथ पूछा, 'क्यों रे, तू कहाँ गया था ?'

रोहित ने सारा किस्सा कह सुनाया। सुनकर माँ की झुंझलाहट काफूर हो गई और गद्‌गद् होकर उन्होंने असीम प्यार और गहरी ममता के साथ बालक को छाती से लगा लिया। आँखें उनकी भर आईं। बोलीं—'मेरे प्यारे बेटे! तूने आज हमारे कुल का नाम ऊंचा किया। तुम से मुझे ऐसी ही आशा थी।'

रोहित पुलकित हो उठा।

माँ कहती गयीं, 'मेरे बेटा! हम लोग गरीब हैं तो क्या, हम लोगों के पास ऐसी दौलत है, जो बड़ों-बड़ों के घर भी मुश्किल से मिलेगी।'

कहते-कहते गर्व से माँ की छाती फूल आई और माँ-बेटे के उस अलौकिक आनन्द से मानो वहाँ का मौन वातावरण भी मुस्करा उठा।

लोहार की एक

पौ फटने की खुशी में संसार के सारे मुरगे अपना गला फाड़कर चुप हो चुके थे। अब छोटी चिड़ियों की बारी थी। वे खुली हुई खिड़कियों से झांक कर सोने वालों को धिक्कार रही थीं।

जागने की कोशिश में उसने भी कुछ करवटें बदल डालीं। पर दो करवटों के बीच में उसकी आंखें एक बार फिर जरा लग गईं। इस समय उसने स्वप्न क्या देखा कि ब्रह्मा अपने कमंडल में हिमालय पर्वत को रख कर हिला रहे हैं। वह उठ बैठा। उसने देखा कि उसके कमरे का दरवाजा हाथों से, लकड़ियों से और जूतों से पीटा जा रहा है।

उसने घबरा कर कमरा खोल दिया। बाहर बोर्डिंग के छंटे हुए शैतानों का एक दल खड़ा था। उनमें से एक ने कहा, 'अजी तुम अभी सो रहे हो। आज हम लोगों की पिकनिक पार्टी है। चलो तुम्हें भी चलना होगा।'

अपने दुर्भाग्य से उसने नहीं करना नहीं सीखा था। यही उसकी कमी और कचाई थी। अपनी बुद्धि के बारबार मना करने पर भी उसने हामी भर दी।

पिकनिक के लिए जो स्थान नियत हुआ था वह ठीक नदी के किनारे शहर से पांच-छः मील के फासले पर था। रास्ता पगडण्डियों का था। पैदल चल कर वहां पहुंचना था।

सात बजे तक वे सब रवाना हो गये। उनकी संख्या दर्जन के पार ही थी। जिमि दशनन महँ जीभ बिचारी—वह भी उनके साथ चला।

पिकनिक का थोड़ा आनन्द तो उसे चलने के पहले ही प्राप्त हो गया जब प्रायः सभी ने उसे अपनी एक-न-एक चीज हवाले की, और कहा कि इसे लिए चलो। मुरारी ने अपना ओवरकोट उसके कन्धों पर डाल दिया कि संध्या-समय जरूरत पड़ेगी तो ले लूँगा। मोहन ने दो मोटे उपन्यास उसकी बगल में दबा दिए कि इच्छा होगी तो कहीं लेट कर पढ़ूँगा। माधो आज नदी के किनारे खुली हवा में कसरत करने वाला था। उसने अपने डम्बेल उसे पकड़ा दिए कि वहाँ पहुँच कर तुमसे ले लूँगा।

मालगाड़ी-सा लदा हुआ और एञ्जिन-सा हाँफता हुआ वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। दोपहर तक खाना तैयार हुआ और लोग खाने बैठे।

खाने के पहले वह हाथ-पाँव धोने नदी के किनारे गया था। लौटकर देखता है कि उसकी पत्तल से चूरमे के लड्डू गायब हैं और दही-बड़ों के नाम पर सकोरे में थोड़ा मठा बच रहा है।

उसने एक लम्बी साँस ली और खाने बैठ गया। खाने के बाद लोगों ने उसकी कमीज से, जिसे उसने उतार कर टाँग दिया था, हाथ पोंछे। वह लेटा था कि उसकी नाक पर सुँघनी बुरकी जाने लगी। अपनी नाराजी प्रकट करने के लिए वह उनकी ओर पीठ फेरकर बैठा तो उसकी पीठ पर तबला बजाया जाने लगा।

वह सबसे अलग एक पत्थर पर जा बैठा। उसका मन खट्टा हो गया था। उसकी आज तक की आपबीती उसकी

आँखों के सामने एक-एक करके गुजरने लगी। बोर्डिंग में उसका पहला दिन भी खैरियत से नहीं बीता था—उसने अपने बादामी जूतों पर काली पालिश पुती हुई पाई थी।

फिर तो वह रोज ही ऐसी हरकतों का शिकार बनता। बाहर से साँकर चढ़ाकर वह घण्टों अपने कमरे में कैद कर दिया जाता। बोर्डिंग-भर में जितने केले और सन्तरे खर्च होते सब के छिलके उसके दरवाजे पर फेंके जाते।

एक बार उसका आधा टिन घी गायब हो गया और उसके स्थान पर उसे चावल का माँड भरा मिला। एक रोज पानी पीने के लिए वह मुँह के पास लोटा ले गया था कि उसमें से एक जीता-जागता मेंढक उछल पड़ा, जिसे—पीछे मालूम हुआ—मुरारी ने कहीं से पकड़ कर उसमें बन्द कर दिया था। लोटा हाथ से छूट कर उसके पैर के अँगूठे पर गिरा और वह अरसे तक लँगड़ाता रहा।

एक समय आता है जब चन्दन भी आग फेंक देता है। कितना सहूँ, कैसे सहूँ और कब तक सहूँ—यही प्रश्न उसके दिल में उठते थे और विलीन होते थे। आफत एक तरफ से हो और एक तरह की हो तो कोई बर्दाश्त भी कर ले, यहाँ तो सारा बोर्डिंग एक विशाल कारखाना था जहाँ नित्य कोई नई शैतानी गढ़-छीलकर तैयार होती और जिसकी आजमाइश उसी के ऊपर की जाती।

खैर, किसी तरह शाम हुई और दोस्तों ने चलने की तैयारी की। वह भी उनके साथ चला। पर होनहार को कौन जानता था।

वह दस कदम भी न चला होगा कि चीख उठा। जब तक लोग उसके पास दौड़कर आवें तब तक वह लड़खड़ा कर गिर पड़ा। चारों ओर से 'क्या है ? क्या है ?' की आवाज

आने लगी। उसने हाथ मार कर कहा कि मुझे साँप ने काट खाया है।

यह सुनना था कि सबको जैसे काठ मार गया। यह कैसा रङ्ग में भङ्ग! शहर से सात मील का फासला और पगडंडियों का रास्ता। कोई होशियार डाक्टर मिलता तो बेचारे की जान न जाती। लेकिन डाक्टर बिना शहर गए कहाँ मिलेंगे।

मुरारी के भी हाथ-पाँव फूल गए थे पर उसने शीघ्र अपने को सँभाला। पास में एक गाँव था। वहीं किसी किसान से उसने दो रुपये में एक खाट मोल ली।

इसी खाट पर उसे डालकर चार लड़कों ने अपने सर पर उठा लिया और शहर की ओर ले दौड़े। बाकी दस-बारह लड़के साथ-साथ दौड़ चले। पहली चौकड़ी के थक जाने पर दूसरी चौकड़ी खाट को उठा लेती थी। यों ही कन्धे बदलते वे भागे जा रहे थे।

उसका वजन कम नहीं था। जो उसे खाट समेत उठाकर दौड़ रहे थे उन्हीं का दिल जानता था। दौड़ते-दौड़ते उनका बुरा हाल था। पसीने से तर तो सभी हो रहे थे। कुछ लड़के अपना पेट पकड़कर हाँफ रहे थे, पर तब भी दौड़ते जा रहे थे। रास्ते में जो मिलता वही उन्हें तेज दौड़ने की सलाह देता।

वह भी उन्हें दम न लेने देता था। वह खाट पर लेटा बराबर कराह रहा था। कभी-कभी वह उठ बैठता और पागलों के-से हाथ पटकने लगता। उस समय उसकी खाट जिनके सर पर होती वे बेचारे त्राहि-त्राहि पुकारते। उन्हें इतना भी समय न था कि रुक कर जरा अपना सर सहला लेते।

अपनी विक्षिप्तता की अवस्था में वह अकसर चिल्ला उठता कि मेरी जान जा रही है और तुम लोग चहलकदमी कर रहे हो। यद्यपि न्याय की बात यह है कि इस समय दौड़ने में वे घोड़ों को भी मात कर रहे थे। वह कभी-कभी मार भी बैठता। उसके दाहिने हाथ की ओर खाट उठाने में लड़के झिझकते थे, पर लाचारी थी, उठानी पड़ती।

खैर, घण्टे-भर सरपट दौड़ने के बाद शहर की बिजलियाँ दिखलाई पड़ने लगीं। शहर में घुसते ही बोर्डिंग था और पास ही सिविल-सर्जन का बँगला था।

लड़कों ने सिविल-सर्जन के बँगले पर उसकी खाट उतारी। घोर श्रान्ति के कारण वे मृतप्राय हो रहे थे। जिसे जहाँ जगह मिली वह वहीं गिरकर बैठ रहा। उनकी साँस धौंकनी की तरह चल रही थी, मुँह से सीधी बात न निकलती थी।

खैर, साहब को खबर हुई। वे खाना खा रहे थे। छोड़कर बाहर आए। उन्हें देखकर वह उठ बैठा। साहब ने पूछा, 'तुम्हें साँप ने कहाँ काटा है ?'

उसने निहायत सादगी और सीधेपन से कहा—'कैसा साँप ?'

'तुम्हें साँप ने काटा है न ?'

'नहीं तो। कौन कहता है ?'

साहब ने उसके साथियों की ओर इशारा किया। उसने कहा—'ये सब शैतान हैं। आपको बेवक़ूफ बना रहे हैं। मुझे साँप क्यों काटने लगा ? मैं तो थककर इस खाट पर सो गया था। ये सब शरारतन मुझे ले भागे।'

इस समय उन शैतानों की दशा देखने योग्य थी। जान पड़ता था कि किसी ने तेजाब में डालकर उन्हें पकाया है।

बालक ने सगर्व छाती फुलाकर कहा, "किसका साहस है जो मेरे शासन को न माने। जब मैं राजा हूँ, तब मेरी आज्ञा अवश्य मानी जायगी।"

ब्राह्मण ने आश्चर्य से बालक से पूछा, "राजन् ! आपका शुभ नाम क्या है ?"

तब तक उसकी माँ वहाँ आ गयी और ब्राह्मण से हाथ जोड़कर बोली, "महाराज, यह बड़ा धृष्ट लड़का है, इसके किसी अपराध पर ध्यान न दीजिएगा।"

चाणक्य ने कहा, "कोई चिन्ता नहीं, यह बड़ा होनहार बालक है। इसकी मानसिक उन्नति के लिए तुम इसे किसी प्रकार राजकुल में भेजा करो।"

उसकी माँ रोने लगी। बोली, "हम लोगों पर राजकोप है और हमारे पति राजा की आज्ञा से बन्दी किये गये हैं।"

ब्राह्मण ने कहा, "बालक का कुछ अनिष्ट न होगा, तुम इसे अवश्य राजकुल में ले जाओ।"

इतना कह कर बालक को आशीर्वाद देकर वह चला गया। उसकी माँ, डरते-डरते, एक दिन, अपने चंचल और साहसी लड़के को लेकर, राज-सभा में पहुँची।

'नन्द' एक निष्ठुर, मूर्ख और त्रासजनक राजा था। उसकी राजसभा बड़े-बड़े चापलूस मूर्खों से भरी रहती थी।

पहले राजा लोग एक दूसरे के बल, बुद्धि और वैभव की परीक्षा लिया करते थे और इसके लिए वे तरह-तरह के उपाय रचते थे।

उसी समय, जब बालक माँ के साथ राज-सभा में पहुँचा, किसी राजा के यहाँ से, नन्द की राज-सभा की बुद्धि का अनुमान करने के लिए, लोहे के पिंजड़े में मोम का सिंह बना

कर भेजा गया था और उसके साथ यह कहलाया गया था कि पिंजड़े को खोले बिना ही सिंह को बाहर निकाल लीजिए।

सारी राज-सभा इस पर विचार करने लगी। पर उन चाटुकार मूर्ख सभासदों को कोई उपाय नहीं सूझा।

अपनी माता के साथ वह बालक यह लीला देख रहा था। वह भला कब माननें वाला था। उसने कहा, "मैं निकाल दूंगा।"

सब लोग हँस पड़े। बालक की ढिठाई भी कम न थी। राजा नन्द को भी आश्चर्य हुआ। नन्द ने कहा, "यह कौन है ?"

मालूम हुआ कि राजबन्दी मौर्य सेनापति का यह लड़का है। फिर क्या था, नन्द की मूर्खता की अग्नि में एक और आहुति पड़ी। क्रुद्ध होकर बोला, "यदि इसे न निकाल सकेगा, तो तू भी इस पिंजड़े में बन्द कर दिया जायगा।"

उसकी माता ने देखा कि यह भी कहाँ से विपत्ति आयी। परन्तु बालक निर्भीकता से आगे बढ़ा, और पिंजड़े के पास जाकर उसको भलीभाँति देखा। फिर लोहे की शलाकाओं

को गरम करके उस सिंह को गलाकर पिंजड़े को खाली कर दिया।

सब लोग चकित रह गये। राजा ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

उसने कहा, "चन्द्रगुप्त।"

फिर राजा ने उस पर प्रसन्न होकर उसे तक्षशिला के विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए भेजा, और आगे चलकर यही बालक उसी ब्राह्मण 'चाणक्य' की सहायता से चक्रवर्ती सम्राट् 'चन्द्रगुप्त मौर्य' हुआ, जो ईसा के ३२१ वर्ष पहले, मगध में पाटलिपुत्र के राज-सिंहासन पर बैठा और अपने बाहु-बल से सिकन्दर के यूनानी साम्राज्य के आतंक से भारत को स्वतन्त्र किया।

कहानी

हार की जीत

माँ को अपने बेटे, साहूकार को अपने देनदार और किसान को अपने लहलहाते खेत देखकर जो आनन्द प्राप्त होता है वही आनन्द बाबा भारती को अपना घोड़ा देखकर आता था। भगवद्-भजन से जो समय बचता, वह घोड़े के अर्पण हो जाता। यह घोड़ा बड़ा सुन्दर था और बड़ा बलवान। इसके जोड़ का घोड़ा सारे इलाके में न था। बाबा भारती उसे 'सुल्तान' कहकर पुकारते, अपने हाथ से खरहरा करते, खुद दाना खिलाते और देख-देख कर प्रसन्न होते थे। ऐसी लगन, ऐसे आदर, ऐसे स्नेह से कोई व्यक्ति अपने सच्चे प्रेमी और हितैषी को भी न चाहता होगा। उन्होंने अपना सब कुछ छोड़ दिया था—रुपया, माल, असबाब, जमीन—यहाँ तक कि उन्हें नागरिक जीवन से भी घृणा थी। अब एक गाँव से बाहर छोटे-से मन्दिर में रहते और भगवान का भजन करते थे, परन्तु 'सुल्तान' से बिछुड़ने की वेदना उनके लिए असह्य थी। मैं इसके बिना नहीं रह सकूँगा, उन्हें ऐसी भ्रान्ति-सी हो गई थी। वे उसकी चाल पर लट्टू थे। कहते, ऐसा चलता है, जैसे मोर घन-घटा को देखकर नाच रहा हो। गाँव के लोग इस मोहमाया को देखकर चकित थे; कभी-कभी कनखियों से देखकर इशारे भी करते थे, परन्तु बाबा भारती को इसकी परवाह न थी। जब तक सन्ध्या समय सुल्तान पर चढ़ कर आठ-दस मील का चक्कर न लगा लेते तब तक उन्हें चैन न आता।

खड्गसिंह उस इलाके का प्रसिद्ध डाकू था। लोग उसका नाम सुनकर काँपते थे। होते-होते सुल्तान की कीर्ति उसके कानों तक भी पहुँची। उसका हृदय उसे देखने के लिए अधीर हो उठा। वह एक दिन दोपहर के समय बाबा भारती के पास पहुँचा और नमस्कार करके बैठ गया।

बाबा भारती ने पूछा—"खड्गसिंह, क्या हाल है ?"

खड्गसिंह ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—"आपकी दया है।"

"कहो, इधर कैसे आ गए ?"

"सुल्तान की चाह खींच लाई।"

"विचित्र जानवर है। देखोगे, तो प्रसन्न हो जाओगे।"

"मैंने भी बड़ी प्रशंसा सुनी है।"

"उसकी चाल तुम्हारा मन मोह लेगी।"

"कहते हैं, देखने में भी बड़ा सुन्दर है।"

"क्या कहना। जो उसे एक बार देख लेता है, उसके हृदय पर उसकी छवि अंकित हो जाती है।"

"बहुत दिनों से अभिलाषा थी, आज उपस्थित हो गया हूँ।"

बाबा और खड्गसिंह दोनों अस्तबल में पहुँचे। बाबा ने घोड़ा दिखाया घमण्ड से, खड्गसिंह ने घोड़ा देखा आश्चर्य से। उसने सहस्रों घोड़े देखे थे, परन्तु ऐसा बाँका घोड़ा उसकी आँखों से कभी न गुजरा था। सोचने लगा, भाग्य की बात है। ऐसा घोड़ा खड्गसिंह के पास होना चाहिए था। इस साधु को ऐसी चीजों से क्या मतलब ? कुछ देर तक आश्चर्य से चुपचाप खड़ा रहा। इसके पश्चात् हृदय में हलचल होने लगी, बालकों की-सी अधीरता से बोला—"परन्तु बाबाजी, इसकी चाल न देखी तो क्या देखा ?"

: २ :

बाबा जी मनुष्य ही थे। अपनी वस्तु की प्रशंसा दूसरे के मुख से सुनने के लिए उनका हृदय भी अधीर हो गया। घोड़े को खोल कर बाहर लाये और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। एकाएक उचक कर सवार हो गये। घोड़ा वायु-वेग से उड़ने लगा। उसकी चाल देखकर, उसकी गति देखकर, खड्गसिंह के हृदय पर साँप लोट गया। वह डाकू था और जो वस्तु उसे पसन्द आ जाय, उस पर वह अपना अधिकार समझता था। उसके पास बाहु-बल था, रुपया था और आदमी भी थे। जाते-जाते बोला—"बाबा जी मैं यह घोड़ा आपके पास न रहने दूंगा।"

बाबा भारती डर गए। अब उन्हें रात को नींद न आती थी। सारी रात अस्तबल की रखवाली में कटने लगी। प्रतिक्षण खड्गसिंह का भय लगा रहता। परन्तु कई मास बीत गये और वह न आया। यहाँ तक कि बाबा भारती कुछ लापरवाह हो गये, और इस भय को स्वप्न के भय की नाईं मिथ्या समझने लगे।

सन्ध्या का समय था। बाबा भारती सुल्तान की पीठ पर सवार होकर घूमने जा रहे थे। इस समय उनकी आँखों में चमक थी, मुख पर प्रसन्नता थी। कभी घोड़े के शरीर को देखते, कभी रंग को और मन में फूले न समाते थे।

सहसा एक ओर से आवाज आई—"ओ बाबा! इस कंगले की बात भी सुनते जाना।"

आवाज में करुणा थी। बाबा ने घोड़े को थाम लिया। देखा, एक अपाहिज वृक्ष की छाया में पड़ा कराह रहा है। बोले—"क्यों, तुम्हें क्या कष्ट है?"

अपाहिज ने हाथ जोड़कर कहा—"बाबा, मैं दुखिया हूँ;

मुझ पर दया करो। रामांवाला यहाँ से तीन मील है, मुझे वहाँ जाना है। घोड़े पर चढ़ा लो, परमात्मा तुम्हारा भला करेगा।"

"वहाँ तुम्हारा कौन है ?"

"दुर्गादत्त वैद्य का नाम तो आपने सुना होगा। मैं उनका सौतेला भाई हूँ।"

बाबा भारती ने घोड़े से उतरकर अपाहिज को घोड़े पर सवार किया, और स्वयं उसकी लगाम पकड़कर धीरे-धीरे चलने लगे।

सहसा उन्हें एक झटका-सा लगा और लगाम हाथ से छूट गई। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि अपाहिज घोड़े की पीठ पर तनकर बैठा है और घोड़े को दौड़ाये लिए जा रहा है, तो उनके मुख से भय, विस्मय और निराशा से मिली हुई चीख निकल गई ! यह अपाहिज खड्गसिंह डाकू था।

बाबा भारती कुछ देर तक चुप रहे और इसके पश्चात् कुछ निश्चय करके पूरे बल से चिल्लाकर बोले—"जरा ठहर जाओ।"

खड्गसिंह ने यह आवाज सुनकर घोड़ा रोक लिया, और उसकी गर्दन पर हाथ फेरते हुए कहा—

"बाबाजी, यह घोड़ा अब न दूँगा।"

"परन्तु एक बात सुनते जाओ।"

खड्गसिंह ठहर गया। बाबा भारती ने निकट जाकर उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा, जैसे बकरा कसाई की ओर देखता है, और कहा—"यह घोड़ा तुम्हारा हो चुका। मैं तुमसे इसे वापस करने के लिए न कहूँगा। परन्तु खड्गसिंह ! एक

प्रार्थना करता हूँ, उसे अस्वीकार न करना; नहीं तो मेरा दिल टूट जायगा।"

"बाबाजी, आज्ञा कीजिए, मैं आपका दास हूँ, केवल यह घोड़ा न दूँगा।"

"अब घोड़े का नाम न लो। मैं तुमको इसके विषय में कुछ न कहूँगा। मेरी प्रार्थना केवल यह है कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।"

खड्गसिंह का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया। उसका विचार था कि उसे इस घोड़े को लेकर यहाँ से भागना पड़ेगा, परन्तु बाबा भारती ने स्वयं उससे कहा कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना। इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? खड्गसिंह ने बहुत सोचा, बहुत सर मारा, परन्तु कुछ समझ न सका। हार कर उसने अपनी आँखें बाबा भारती के मुख पर गड़ा दीं और पूछा—"बाबाजी, इसमें आपको क्या डर है?"

बाबा भारती ने उत्तर दिया—"लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया, तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे।"

और यह कहते-कहते उन्होंने सुल्तान की ओर से इस तरह मुँह मोड़ लिया, जैसे उनका उससे कभी कोई सम्बन्ध ही न था। बाबा भारती चले गये, परन्तु उनके शब्द खड्गसिंह के कानों में उसी प्रकार गूँज रहे थे। सोचता था, कैसे उच्च विचार हैं? कैसा पवित्र भाव है? उन्हें इस घोड़े से प्रेम था। इसे देखकर उनका मुख फूल की नाईं खिल जाता था। कहते थे, इसके बिना मैं रह न सकूँगा। इसकी रखवाली में वह कई रातें सोये नहीं। भजन-भक्ति के बदले रखवाली करते रहे! परन्तु आज उनके मुख पर चिन्ता की रेखा तक

न देख पड़ती थी। उन्हें केवल यह ख्याल था कि कहीं लोग गरीबों पर विश्वास करना न छोड़ दें। उन्होंने अपनी निज की हानि को मनुष्यत्व की हानि पर न्यौछावर कर दिया। ऐसा मनुष्य, मनुष्य नहीं, देवता है।

: ३ :

रात्रि के अन्धकार में खड्गसिंह बाबा भारती के मन्दिर में पहुँचा। चारों ओर सन्नाटा था। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। थोड़ी दूर पर गाँव के कुत्ते भौंकते थे। मन्दिर के अन्दर कोई शब्द सुनाई न देता था। खड्गसिंह सुल्तान की बाग पकड़े हुए था। वह धीरे-धीरे अस्तबल के फाटक पर पहुँचा। फाटक चौपट खुला था। किसी समय वहाँ बाबा भारती स्वयं लाठी लेकर पहरा देते थे, परन्तु आज उन्हें किसी चोरी या किसी डाके का भय न था। हानि ने उन्हें हानि की ओर से बेपरवाह कर दिया था। खड्गसिंह ने आगे बढ़कर सुल्तान को उसके स्थान पर बाँध दिया, और बाहर निकलकर सावधानी से फाटक बन्द कर दिया। इस समय उसकी आँखों में पश्चाताप के आँसू थे।

अन्धकार में रात्रि ने तीसरा पहर समाप्त किया। चौथा पहर आरम्भ होते ही बाबा भारती ने अपनी कुटिया से बाहर निकल ठण्डे जल से स्नान किया। उसके पश्चात् इस प्रकार जैसे कोई स्वप्न में चल रहा हो, उनके पाँव अस्तबल की ओर मुड़े, परन्तु फाटक पर पहुँच कर उनको अपनी भूल प्रतीत हुई, साथ ही घोर निराशा ने पाँवों को मन-मन भर का भारी बना दिया। वे वहीं रुक गये।

घोड़े ने स्वाभाविक मेधा से अपने स्वामी के पाँवों की चाप को पहचान लिया और वह ज़ोर से हिनहिनाया।

बाबा भारती दौड़ते हुए अन्दर घुसे। अपने घोड़े के गले

से लिपट कर इस प्रकार रोने लगे, जैसे बिछड़ा हुआ पिता चिरकाल के पश्चात् पुत्र से मिलकर रोता है। बार-बार उसकी पीठ पर हाथ फेरते थे। बार-बार उसके मुँह पर थपकियाँ देते थे और कहते थे—"अब कोई गरीबों की सहायता से मुँह न मोड़ेगा।"

थोड़ी देर के बाद जब वे अस्तबल से बाहर निकले तब उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। ये आँसू उसी भूमि पर ठीक उसी जगह गिर रहे थे, जहाँ बाहर निकलने के बाद खड्गसिंह खड़ा होकर रोया था।

दोनों के आँसुओं का उस भूमि की मिट्टी पर परस्पर मेल हो गया।

सब को बुद्धू बनाया

बात बहुत पहले की है। डेन्मार्क में एक राजा राज करता था। इस राजा को बढ़िया-से-बढ़िया और नित नए कपड़े पहनने का शौक था। जब देखो नया सूट, नया डिजाइन और नया फैशन। एक-से-एक बढ़िया उसके पास सैकड़ों सूट थे। फिर नित नया खरीदता। उसने कई दर्जी सूट सीने के लिए रख रखे थे, उसको कपड़ों के शौक की यह बात दूर-दूर तक फैल चुकी थी।

एक दिन दो ठग उसकी राजधानी में आए। उन्हें पता लगा कि राजा कपड़ों का बड़ा शौकीन है। उन्होंने राजा को ठगने की एक तरकीब सोच निकाली।

दूसरे दिन वे राजमहल में जा पहुँचे। कहने लगे कि "हम बढ़िया-से-बढ़िया कपड़ा बुनने वाले जुलाहे हैं। कहें तो एक-से-एक बढ़िया कपड़ा बनाकर दिखा दें। नया डिजाइन, नया रंग और मजबूत इतने कि टूटने का नाम न लें। राजा साहब ! एक बार हमारे हाथ का बुना कपड़ा पहन लेंगे तो फिर किसी और का बुना उन्हें पसन्द ही नहीं आएगा।" एक बात तो उन्होंने ऐसी कही कि राजा के मन में बैठ गई। कहने लगे—"महाराज ! हम राजा-महाराजाओं के लिए एक खास किस्म का कपड़ा भी बनाते हैं। बस, उसे आप जादू का ही कपड़ा समझिए। हर कोई तो उसे देख भी नहीं सकता। वह तो सिर्फ समझदार और अपने काम में होशियार

आदमियों को ही दिखाई देता है। बेवकूफ और अपने ओहदे के नाकाबिल आदमियों को वह बिल्कुल दिखाई ही नहीं देगा।"

कपड़ों का शौकीन राजा उन जुलाहों की बातें सुनकर बहुत खुश हुआ। सोचने लगा—'एक पन्थ दो काज।' एक तो बढ़िया कपड़े पहनने को मिलेंगे; फिर यह भी पता लग जायेगा कि कौन वजीर मूर्ख और वजीरी करने के नाकाबिल है। अफसरों की भी पहचान हो जाएगी।

उसने झट से जुलाहों को हुक्म दिया कि वे अपना जादू का कपड़ा बुनना शुरू करें। काम शुरू करने के लिए बहुत-से रुपये दे दिये। महल के भीतर ही खड्डी लगाने के लिए एक कमरा खाली करवा दिया और कह दिया कि अब देर नहीं होनी चाहिए। रुपयों की और जरूरत पड़े तो माँग लेना, पर कपड़ा बनाने में कोई कसर न रखना।

ठग मन-ही-मन खुश हो रहे थे। उन्होंने अपनी खड्डी लगा ली और कपड़ा बुनने की तैयारी करने लगे। दूसरे ही दिन ठक-ठक खड्डी चलने लगी। उन्होंने शाम तक खूब डटकर काम किया और दिन डूबा तो उठकर शहर की सैर को निकले। राजा से रेशम खरीदने के लिए जितना रुपया मिला था, खूब खाया-उड़ाया।

कुछ दिनों बाद राजा ने सोचा, देखूं तो सही कपड़ा कितना और कैसा बुना गया? लेकिन फिर ख्याल आया कि यह कोई ऐसा-वैसा कपड़ा तो है नहीं। क्या मालूम मुझे भी दिखाई दे या नहीं? अगर कहीं न दिखाई दिया तो मूर्ख और राजगद्दी के लिए नाकाबिल समझा जाऊँगा। यही सोच कर राजा अपने आप देखने जाने से घबराया। उसने अपने सारे वजीरों का ख्याल किया कि किसको पहले भेजूं? फिर एक पुराने और समझदार वजीर को चुना कि वही सबसे पहले कपड़ा देखे। राजा का विचार था कि यह बूढ़ा वजीर

समझदार होने के साथ ही वजीरी करने के भी काबिल है। इसलिए उसे जरूर कपड़ा दिखाई देगा।

उसने वजीर को बुलाया और हुक्म दिया, "जाकर देखो कि कपड़ा कितना और कैसा बुना गया।"

बूढ़ा वजीर जुलाहों के कमरे में पहुँचा। खड्डी ठक-ठक चल रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि काम बड़े जोर-शोर से हो रहा है। पर जब पास जाकर देखा तो उसकी हैरानी का ठिकाना न रहा। खड्डी पर सूत का नाम-निशान तक नहीं था। जुलाहे उसे खाली ही चलाए जा रहे थे। मूर्ख और नाकाबिल आदमियों को यह कपड़ा न दिखाई देने की बात उसे मालूम ही थी। सोचने लगा कि अगर मैं यह कहूँगा कि मुझे तो कपड़ा दिखाई ही नहीं दिया तो राजा मुझे मूर्ख और वजीरी के काम के नाकाबिल समझेगा। खैर, वह खड्डी के बिलकुल पास जाकर देखने लगा। पर वहाँ तो कुछ भी नहीं था, जो दिखाई देता। जुलाहे इस समय भी खड्डी चलाए जा रहे थे। वजीर ने कहा कि सचमुच कपड़ा बहुत बढ़िया है। रंग और डिजाइन की भी उसने खूब तारीफ की। और फिर ऐसा बढ़िया कपड़ा बुनने वाले जुलाहों की भी तो तारीफ करनी ही चाहिए थी। वजीर साहब ने वह भी कर दी।

वजीर जब वापस जाने लगा तो जुलाहों ने कहा कि वजीर साहब कपड़ा तो आप देख ही चले कि कितना बढ़िया है। अब राजा साहब से कहिए कि कुछ रुपए और भिजवा दें।

बूढ़ा वजीर राजा के पास गया और कहने लगा कि कपड़ा वाकई बढ़िया है। राजा ने जुलाहों को और बहुत-से रुपए भिजवा दिये।

दो-तीन दिन बाद राजा ने दूसरे वजीर को भेजा कि जाकर देख आए कि काम ठीक से हो रहा है या नहीं। दीखा तो उसे भी वहाँ कुछ नहीं, पर सच्ची बात कहकर मूर्ख कौन

बनता ? उसने भी आकर कह दिया कि कपड़ा बहुत ही अनोखा है ।

राजा ने सोचा कि अगर दोनों वजीरों को वह कपड़ा दीख गया तो इसका मतलब है कि वे अपना काम करने के काबिल हैं । तो फिर कोई वजह नहीं कि मुझे वह कपड़ा दिखाई न दे । मैं भी तो अपने काम में खूब होशियार हूँ । यह सोचकर राजा भी कपड़ा बुनने की जगह पहुँचा । जुलाहे उसी तरह ठक-ठक खड्डी चला रहे थे ।

पर वहाँ कुछ होता तो दिखाई भी देता । राजा ने सोचा—हो सकता है मैं ही मूर्ख होऊँ या अपने काम के नाकाबिल होऊँ । वह अभी सोच ही रहा था कि क्या कहे और क्या न कहे कि उनमें से एक जुलाहा पास आकर खड़ा हो गया और प्रणाम करके पूछने लगा कि "कहिए, महाराज ! आपको कपड़ा पसन्द आया या नहीं ? महाराज को इसका डिजाइन और बार्डर कैसे लगे ?"

"हाँ-हाँ" राजा ने झट से जवाब दिया । उन जुलाहों ने मन-ही-मन सोचा कि राजा को कुछ दिखाई तो दिया नहीं है, वैसे ही कह रहे हैं । फिर पूछने लगे—"क्या आपने कभी इतना बारीक और इतने बढ़िया डिजाइन का कपड़ा आगे भी देखा है ?"

"नहीं, मैंने आज तक इतना बढ़िया कपड़ा नहीं देखा था ।" राजा ने उत्तर दिया ।

कुछ ही दिनों बाद घोड़े पर राजा साहब की सवारी का जलूस निकलना और उसे सारे शहर में घूमना था । उन ठग जुलाहों को यह बात मालूम थी और उन्हें यह भी पता था कि राजा साहब हमेशा ही इस मौके पर बढ़िया नए कपड़े पहनते हैं । उन्होंने राजा को विश्वास दिलाया कि उस दिन

तक यह नए कपड़े सिलकर तैयार हो जाएँगे। राजा यह सुनकर प्रसन्न हुआ।

अगले दिन उन ठगों ने अपने साथी तीसरे ठग को बुला लिया और कहने लगे कि यह बड़ा कारीगर दर्जी है। यही इस सूट को सीएगा। इधर सूट सिलने की बात तय हो गई, तो राजा ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो इस अनोखे कपड़े को देखना चाहे आकर देख ले। फिर क्या था, देखने वालों की भीड़ जमा हो गई। पर उनमें से किसी को भी कुछ दिखाई न दिया। इस पर भी किसी की हिम्मत नहीं पड़ी कि सीधी-सच्ची बात कह सके। सभी मूर्ख कहलाने के डर से सच्ची बात छिपाकर झूठ-मूठ की तारीफ करने लगते।

दर्जी रात भर कटाई-सिलाई के काम में लगा रहा। वह अपनी लम्बी और तेज कैंची से हवा में कपड़ा काटने जैसे हाथ चलाता। उसके बाद सुई हाथ में लेकर ऐसा करता जैसे धागा पिरो रहा हो। पर देखने वालों को न धागा दिखाई देता, न कपड़ा। फिर इस तरह हाथ चलाता जैसे कुछ सी रहा हो। सारी रात यही कुछ होता रहा। सुबह होते ही उन्होंने राजा को कहला भेजा कि सूट सिलकर तैयार है। पहनकर देख लें; ताकि कोई नुक्स हो तो ठीक कर दिया जाए। राजा बड़ी उतावली से उसी समय सूट देखने आ पहुँचा। राजा के भीतर आते ही दर्जी ने कोट उठाने, बाजू फैलवाकर पहनाने और बटन बन्द करके आगे-पीछे देखने का नाटक किया। फिर पूछने लगा कि "कहिए महाराज ! आपको यह सूट कैसा लग रहा है ?"

"यह बिलकुल अनोखा है।" राजा ने जवाब दिया, "यह तो मकड़ी के जाले से भी हल्का है। ऐसा लग रहा है कि कुछ पहन ही नहीं रखा है।"

सूट पहन कर राजा शीशे के सामने जा खड़ा हुआ और

देखने लगा। आस-पास खड़े सब लोग सूट की तारीफ करने लगे। कुछ ने कहा—'बड़ा सज रहा है।' कुछ ने सिलाई की तारीफ की तो कुछ कपड़े की बारीकी और रंग की तारीफ करने लगे।

उधर सवारी निकलने का समय हो रहा था। राजा साहब सूट पहने घोड़े पर जा बैठे। सड़क के दोनों ओर जनता कतारें बनाकर खड़ी थी और एक टक राजा साहब को देख रही थी। सभी एक-दूसरे से कहते कि "इस नए सूट में राजा साहब बहुत अच्छे लग रहे हैं! हमें तो इस बात की हैरानी है कि जुलाहों ने इतना बारीक कपड़ा बुना कैसे? जरा रंग और डिजाइन तो देखो कितने गजब का है? हमने तो कभी ऐसा कपड़ा देखा भी नहीं था।"

सभी अपनी मूर्खता छिपाने के लिए तरह-तरह की बातें कर रहे थे। एक भी ऐसा साहसी न निकला, जो दिल की सच्ची बात कह सकता। राजा साहब केवल एक कच्छा पहने सारे शहर में घोड़े पर बैठे घूमते रहे।

आखिर एक छोटा लड़का दौड़ता हुआ आया और अपने पिता से चिल्लाकर कहने लगा—'देखो पिताजी, आज हमारे राजा साहब बिना कोट-पैंट पहने ही क्यों घोड़े पर बैठे घूम रहे हैं। रोज तो वे बहुत बढ़िया-बढ़िया कोट पहना करते हैं। फिर आज क्या बात है जो केवल एक कच्छा मात्र पहन रखा है।'

बस, फिर क्या था? सारे बच्चे ताली पीट-पीट कर हँसने लगे और चिल्लाने लगे कि राजा साहब बिना सूट के बैठे हैं। बच्चों की बात सुनकर बड़ों में भी काना-फूसी होनी शुरू हो गई। थोड़ी देर पहले जो लोग सूट की तारीफ कर रहे थे, वे ही अब कहने लगे कि राजा ने केवल एक कच्छा ही पहन रखा है।

पहुँचते-पहुँचते आखिर बात राजा तक पहुँची। राजा ने सोचा—बात तो उन्हीं की सच्ची है। उसे ख्याल आया कि उन झूठे ठग जुलाहों ने मुझसे चाल चली है। मेरे कपड़ों

के शौकीन होने का मजाक उड़ाया है। वह मन ही मन बहुत लज्जित हुआ, पर अब क्या हो सकता था? उसने सोचा कि अगर आधे रास्ते से ही जलूस वापस हो जाएगा तो वे ठग अपनी पोल खुलने का पता लगने पर भाग निकलेंगे। इसलिये जलूस सारे शहर में घूमता रहा। राजा ने सोचा कि वापिस जाकर उन ठगों को ऐसी सजा दूँगा कि याद करेंगे।

जब राजा की सवारी महलों में वापस पहुँची तो राजा ने जुलाहों को बुला भेजा; पर तब तक वे भाग चुके थे।